एकाङ्की-विहार

सम्पादक
विष्णु प्रभाकर

प्रकाशक
गुलाबचन्द कपूर एण्ड सन्ज़
दिल्ली - अम्बाला - लखनऊ

एकाङ्की-विहार

सम्पादक
विष्णु प्रभाकर

प्रकाशक
गुलाब चन्द कपूर एण्ड सन्ज़
दिल्ली – अम्बाला – लखनऊ

Printed at the Mercantile Printing Press, Delhi by Shri Gowardhan Kapur, M.A., and Published by him for M s. Gulab Chand Kapur & Sons, Book-Sellers, Publishers, DELHI.

आमुख

नाट्यकला सबसे बड़ी सामाजिक कला है। जनजागृति के आज के युग में उसके भविष्य की कल्पना करना कठिन नहीं है। हर अवस्था में वह उज्ज्वल है। पर साथ ही यह भी निश्चित है कि समाज में जो भी परिवर्तन होंगे उनकी छाप सबसे पहले इस कला पर पड़ेगी। वैसे यह मात्र प्रतिबिम्ब ही नहीं निश्चित रूप से प्रभावित करने वाली भी है।

आज केवल पढ़ने के लिये ही नहीं, खेलने के लिये भी एकांकी का प्रसार बढ़ रहा है और इस प्रसार के कारण हिन्दी रंगमंच के नवनिर्माण की आवाज भी उठ रही है। स्कूल और कालेज की सीमित परिधि से निकल कर वह देहात के मुक्त-प्रांगण में पहुँच गया है। सिनेमा की प्रगति के कारण एक बार नाट्यकला के लोप हो जाने का अनावश्यक भय कुछ लोगों के मनमें उत्पन्न हो गया था पर इधर वह दूर हो चला है। रेडियो ने, यद्यपि उसका विधान रंगमंच के एकांकी से भिन्न है उसके प्रसार को गति दी है।

यूं तो नाट्यकला का इतिहास मानव के लिए जितना पुराना है। एकांकी भी किसी न किसी रूप में अति-प्राचीन काल से चला आ रहा

है पर इधर जो इस कला को फिर से नव-जीवन मिला है उस पर पश्चि
का प्रभाव स्पष्ट है। वह कई प्रकार से नई चीज है। और विषय तथा विधा
की दृष्टि से उसके प्रकार भी बहुत हैं। पहले भी थे पर विज्ञान
उनकी संख्या और भी बढ़ा दी है। उदाहरण के लिये रेडियो रूपक औ
रेडियो एकांकी का विलास इसी शताब्दी के चौथे और पाँचवे दशक
हुआ है। वह रंगमंच के एकांकी से एक दम भिन्न है। उसमें कायि
अभिनय के लिये रत्ती भर भी गुंजायश नहीं। इसीलिये वह कुछ कठि
भी है। एक ग्रामीण के शब्दों में अन्धों के इस सिनेमा में कायिक
स्थान पर वाचक अभिनय की ही आवश्यकता है। इसकी अपील भी ब
व्यापक है। और इसीलिये उसका भविष्य बहुत उज्जवल है।

सिनेमा को वास्तविक जीवन के सभी उपकरण उपलब्ध हैं। व
जीवन का चित्र है पर फिर भी इसमें एक बड़ी कमी है और वही कम
रंगमंच के पुनर्जीवित होने की शर्त है। सिनेमा का अभिनय 'जिन्दा
नहीं है। वह मात्र चित्र है। मनुष्य चित्र से सन्तोष कर सकता है प
आनन्द उसे चित्र का वास्तविक व्यक्ति ही दे सकता है। इसलिये रंगमं
का पुनर्निमाण अनिवार्य है।

रंगमंच पर भी, आज के व्यस्तता के युग में, एकांकी की माँग ब
रही है। हवाई जहाज़ के अविष्कार की तरह एकांकी का अविष्कार भी आ
के मानव की बुद्धि-चातुर्य का तर्क सम्मत परिणाम है। यद्यपि आज क
हिन्दी एकांकी साहित्य पूर्ण रूप से समृद्ध तो नहीं हुआ है फिर भी उ
क्षेत्र में अनेक नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। उन प्रयोगों का आधार नई औ
पुरानी दोनों परिपाटियां हैं। प्रस्तुत संग्रह में जो एकांकी और रूप
संग्रहीत किये गये हैं उन्हें नाट्य विधान और शैली की दृष्टि से अधि
से अधिक प्रतिनिधि बनाने का प्रयत्न किया गया है। इस छोटे से संग्र
में एकांकी के सभी भेदों के उदाहरण नहीं संकलित किये जा सकते

फिर भी कुछ प्रसिद्ध रूप पाठकों को इसमें मिलेंगे। उस दृष्टि से यह अपने किस्म का प्रथम ही संग्रह है। इसमें जहाँ विषय की दृष्टि से ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक एकांकी मिलेंगे वहाँ मोनो लॉग (स्वोक्ति या एकपात्री नाटक), फैन्टेसी प्रहसन, झाँकी, गीतिनाट्य रेडियो रूपक और व्यंग के उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं। स्थानाभाँव के कारण कहीं कहीं विषय और विधान दोनों का एक ही उदाहरण दिया है। जैसे बीमार रेडियो और मनोस्तिुज्ञानिक-दोनों प्रकार के रूपकों का उदाहरण है। माँनो वैग हिन्दी में नहीं के बराबर हैं। प्रस्तुत माँनो लॉग पर ध्वनिनाट्य का प्रभाग है।

इन बातों के अतिरिक्त इस बात का ध्यान भी रखा गया है कि इस में प्रतिष्ठित और प्रतिनिधि एकांकीकारों का प्रतिनिधित्व हो सके जो नाम छूट गये हैं वह हमारी स्वनिर्मित विवशता के कारण हैं उनकी क्षमता में किसी प्रकार की शंका के कारण नहीं।

हम उन सभी नाटककारों के प्रति आभारी हैं जिन्होंने कृपा कर अपनी अमूल्य रचनाओं को इस संग्रह में सम्मिलित करने की अनुमति दी।

३३४६, पीपल महादेव,
पो० बा० ११६७, दिल्ली.

विष्णु प्रभाकर

निर्देशिका

प्रहसन

विचारों के बोझ से मुक्त; निर्द्वन्द्व हास्य से छलकता हुआ; जिसके द्वारा स्वयं हँसना और दूसरों को हँसाना प्रधान ध्येय है वही प्रहसन है।

जोंक सोलह आने प्रहसन है।

जोंक

पात्र

भोलानाथ

प्रोफेसर आनन्द

बनवारी

कमला

एक पंजाबी, एक हिन्दुस्तानी, एक मारवाड़ी तथा अन्य लोग

पहला दृश्य

स्थान

भोलानाथ के निवास-स्थान का एक कमरा

[कमरा बहुत बड़ा नहीं और न बहुत खुला है।

कमरे में दो चारपाइयाँ भी बिछी हैं और दो कुर्सियाँ तथा एक छोटी-सी मेज भी रखी है। इसलिए इसे आप शयन-गृह भी कह सकते हैं और ड्राइंग-रूम भी।

शेष समान वही है जो एक साधारण क्लर्क या पत्रकार या ऐसी ही स्थिति के किसी व्यक्ति के यहाँ हो सकता है।

पर्दा उठने पर हम प्रोफेसर आनन्द को मेज के पास रखी कुर्सी पर बैठे एक समाचार-पत्र के पन्ने उलटते देखते हैं।

प्रो० आनन्द शक्ल-सूरत में प्रोफेसर मालूम होते हों सो बात नहीं। शिक्षा जब से बढ़ी और हिन्दुस्तानियों के भोजन की मात्रा जब से घटी है, तब से कॉलेजों में ऐसे छात्र आने लगे हैं जिनको उनकी माताएँ आसानी से आधा टिकट लेकर अपने पास जनाने डिब्बे में बैठा सकती हैं। प्रोफेसर आनन्द कदाचित छात्रावस्था में ऐसी ही किस्म के छात्र थे। अभी अभी एम० ए० करके वे पढ़ाने लगे हैं, इसलिए उनकी अवस्था में कुछ विशेष

अन्तर नहीं आया। उन्हें कोई भी मैट्रिक का छात्र समझ सकता है और इस समय तो वे प्रोफेसर की वेश-भूषा में भी नहीं हैं। एक तहबन्द और कमीज पहने शायद हजामत बनाकर बैठे हैं, क्योंकि साबुन की सफेदी उनके चेहरे पर लगी दिखाई देती है और मेज पर पड़ा हजामत का खुला सामान भी इसी बात की गवाही देता है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद भोलानाथ दायीं ओर के कमरे से प्रवेश करता है, जिधर कदाचित रसोई-घर है।

शक्ल-सूरत से भोलानाथ प्रोफेसर से कुछ मोटा-ताजा है, पर चेहरे से जो बुद्धिमता प्रोफेसर साहब के टपकती है, उसका वहां सर्वथा अभाव है—सीधा-साधा सनकी सा आदमी है, कंधे झाड़ने की आदत है। ऐसे आदमियों को लोग कभी-कभी ज़नमुरीद अथवा पत्नी-व्रत भी कह दिया करते हैं। आकृति से उसके घबराहट टपक रही है।

आनन्द पूर्ववत् समाचार पत्र में निमग्न है]

भोलानाथ (परेशानी के स्वर में) यह फिर आ गया आनन्द! तुम मेरी सहायता करो परमात्मा के लिए!

आनन्द (समाचार पत्र रख कर) कौन आ गया?

(भोलानाथ परेशान सा चारपाई में धंस जाता है।)

भोलानाथ यह एक बार आ जाता है तो जाने का नाम नहीं लेता।

आनन्द कुछ पता भी चले, कौन है यह?

भोलानाथ अरे कौन क्या? राहों का आदमी है।

आनन्द राहों का—तो यों कहो कि तुम्हारे वतनी* हैं।

भोलानाथ अब वतनी को तो हजारों लोग मेरे वतनी हैं और कमरे (कंधे झाड़ कर) मेरे पास केवल यही दो हैं।

---

* वतनी = एक ही गांव या नगर के रहने वाले।

आनन्द (आश्चर्य से) तो क्या इनसे जान-पहचान नहीं।

(उठ कर कमरे में घूमता है।)

भोलानाथ बस, इस बात का चोर हूं कि अपने छोटे भाई से इनके कारनामे सुनता रहा हूँ और......

आनन्द (रुक कर) पर तुमने कहा न कि फिर आ गया, तो इसका मतलब यह है कि ये साहब पहले भी तुम्हें अतिथि-सत्कार का सौभाग्य प्रदान कर चुके हैं।

भोलानाथ (हँस कर) क्या बताऊँ, तनिक बैठो तो विस्तार से कुछ कहूँ!

(आनन्द चारपाई पर बैठना चाहते हैं।)

भोलानाथ यहाँ क्या बैठते हो, वह कुर्सी ले लो।

(कुर्सी घसीटता है।)

आनन्द मैं यहीं अच्छा हूँ, तुम कहो?

भोलानाथ (फिर तनिक सा हँस कर) बात यह है कि वह मेरा छोटा भाई है न परसराम, जैसा वह आवारा है, वैसे ही उसके दोस्त हैं। उसका एक मित्र है सोम या मोम या क्या जाने क्या? वह जब भी आता था, अपने इसी भाई की बड़ी प्रशंसा करता था।

आनन्द देशभक्त हैं?

भोलानाथ ख़ाक!

आनन्द कवि?

भोलानाथ इसकी सात पुश्तों में किसी ने कविता का नाम नहीं सुना!

आनन्द तो वक्ता, डाक्टर, हकीम, वैद्य······?

भोलानाथ (चिढ़ कर) तुम सुनते तो हो नहीं और ले उड़ते हो, वे थे न प्रसिद्ध अभिनेता—मास्टर रहमत! यह उनके साथ रह चुका है।

आनन्द (**ठहाका लगा कर**) तो ये एक्टर हैं !

भोलानाथ (**कंधे झाड़ कर**) अब यह तो मुझे मालूम नहीं कि इसने मास्टर रहमत के प्रसिद्ध नाटक "खून का बदला खून" और "दर्दे जिगर" में कोई अभिनय किया है या नहीं, पर सुना था कि यह उनका दायाँ हाथ है।

आनन्द इस बात से तुम्हें क्या दिलचस्पी थी ?

भोलानाथ (**खिन्न हँसी के साथ**) अरे बचपन था और क्या। जब हम मैट्रिक में पढ़ते थे तो उनके नाटक पढ़ने का बहुत शौक था और यद्यपि उन्हें देखने का अवसर प्राप्त न हुआ था...

आनन्द 'खून का बदला खून' और 'दर्दे जिगर !'

(**व्यंग्य से हँसते हैं।**)

भोलानाथ अरे भाई उन दिनों हमारे लिए तो वे कालीदास और शेक्सपियर से कम न थे। उनके नाटक पढ़ कर और मुहल्ले के एक रसीली आवाज वाले लड़के से उनके गाने सुनकर हम उनकी कला का रसास्वादन कर लिया करते थे।

आनन्द (**हँस कर**) और उनके अज्ञात-प्रशंसकों में थे ?

भोलानाथ तुम तो जानते हो कि प्रसिद्ध लेखकों, नेताओं और अभिनेताओं को लोग साधारण आदमियों से कुछ ऊँचा ही समझते हैं, और उनसे तो दूर रहा, उनके साथ रहने वालों तक से बात कर के फूले नहीं समाते। फिर यह तो रहमत का दायाँ हाथ था...

आनन्द (**'अब समाप्त भी करो यह भूमिका' के से स्वर में**) तो इनसे तुम्हारी भेंट हुई ?

(**फिर उठ कर घूमने लगते हैं।**)

भोलानाथ भेंट ! तुम इसे भेंट कह सकते हो। हमारे नगर के हैं न डाक्टर किशोर...

आनन्द (रुक कर) नगर नहीं, क़स्बा कहो राहों क़स्बा है ।

भोलानाथ (चिढ़ कर) अरे हाँ हाँ, तो मैंने इन्हें डाक्टर किशोरीलाल की दुकान पर बैठे देखा, इनकी बातें दिलचस्पी से सुनीं और शायद एक दो बातों का उत्तर भी दिया था, बस...

आनन्द फिर तुम इन्हें घर ले आये ?

भोलानाथ (और भी चिढ़ कर) अरे कहाँ, तुम बात भी करने दोगे। इस बात को तो दस वर्ष बीत गये, इसके बाद तो यह गत-वर्ष मिला और तुम भली-भाँति जानते हो कि गत-वर्ष मैं किस मुसीबत में दिन काट रहा था। चंगड़-मुहल्ले का वह पीपल-वेहड़ा और उसमें वह लाला ज्वालादास का नारकीय मकान और उसकी अँधेरी कोठड़ियाँ, जिनमें न कोई रोशनदान था और न खिड़की और गर्मियों में बाहर गली में सोना पड़ता था।

आनन्द (ऊब कर) पर बात तो तुम इनसे मिलने की कर रहे थे ?

भोलानाथ हाँ, उन्हीं दिनों जब मैं दिन-भर नौकरी की खोज में घूमता था, यह एक दिन 'पीपल-वेहड़ा' के पास ही चंगड़-मुहल्ले में मिल गया और दूर ही से 'नमस्कार' किया। मैं जल्दी में तो था, पर क्षण भर के लिए रुक गया।

आनन्द तो कहने का मतलब यह...

भोलानाथ (अपनी बात जारी रखते हुए) इसने बड़े तपाक से हाथ मिलाया और कहा कि डाक्टर किशोरीलाल आपकी बड़ी प्रशंसा किया करते हैं। आप मुझे पहचान तो गये हैं—? मैंने कहा—हाँ हाँ मास्टर रहमत...कहने लगे—बीमार है बेचारा दर्दे-गुर्दा से !

आनन्द दर्दे जिगर से नहीं ?

(हँसते हैं।)

भोलानाथ (व्यंग्य की ओर ध्यान न दे कर) मैंने खेद प्रकट किया और पूछा कि सुनाइये कैसे आये ? कहने लगा मुझे भी दर्दे-गुर्दा की शिकायत है !

आनन्द (ठहाका लगा कर) वह किसी ने कहा है न कि एक ही जाति के पक्षी एक ही साथ उड़ते हैं।

भोलानाथ मैंने और भी शोक प्रकट किया। कहने लगा—कर्नल माथुर को दिखाने आया हूँ। कल चला जाऊँगा। मैंने कहा—तो आइए कुछ पानी-वानी पीजिए। कहने लगा—लाला बिहारीलाल प्रतीक्षा तो करते होंगे, पर चलिए अपने वतनी का अनुरोध कैसे टाला जा सकता है।

आनन्द (ठहाका लगाते हैं) यह बिहारीलाल कौन थे ?

भोलानाथ (जल कर) जाने कोई थे भी या नहीं। मेरे तो पाँव तले से धरती निकल गयी ! बड़े ही जरूरी काम से जा रहा था और मैंने तो योंही शिष्टाचार-वश पानी के लिए पूछा था। खैर ले आया और पेशबन्दी के तौर पर मैंने पत्नी से केवल ठंडे पानी का गिलास लाने के लिए कहा। पानी पीकर ये महाशय वहीं गली में बिछी हुई चारपाई पर लेट गये। मुझे जल्दी जाना था। मैंने सकुचाते-सकुचाते कहा—मुझे...अ...जरा जल्दी है, आप किधर जा रहे हैं ? लेकिन इन्होंने बात काट कर और टांगें फैलाते हुए कहा—हाँ-हाँ आप शौक से हो आइए, मैं थक गया हूँ, यहाँ जरा आराम करूँगा।

आनन्द (हँसकर) खूब !

भोलानाथ (कंधे झाड़कर) तुम होते तो मेरी सूरत देखते। नयी-नयी शादी हुई थी और ये हमारे वतनी...

(आनन्द फिर ठहाका लगाते हैं)

भोलानाथ मरता क्या न करता । मुझे तो जल्दी थी, हार कर चला गया। वापस आया तो ये मज़े से बिस्तरा बिछवा कर सो रहे थे और पत्नी बेचारी अन्दर गर्मी में तप रही थी । पहुंचा तो कहने लगी—आपका इतना घनिष्ठ मित्र तो मैंने देखा नहीं । आपके जाने के बाद कहने लगा—तुम तो शायद 'नवाँ शहर' की हो । मैं चुप रही तो बोला—फिर तो हमारी बहन हुईं ।

आनन्द बहन !

भोलानाथ अब कमला मुझ से पूछने लगी कि ये कौन हैं ? मैं क्या बताता ! इतना कह कर चुप हो रहा कि हमारे वतनी हैं। चारपाइयाँ हमारे पास केवल दो थीं । आखिर वह गरीब सख्त-गर्मी में भी अन्दर फर्श पर सोयी ! ख्याल था कि दूसरे दिन चले जायँगे; लेकिन पूरे सात दिन रहे और जब गये तो मैंने कसम खाकर कमला से कहा कि अब कभी नहीं आयेंगे । लेकिन यह फिर आ धमका है और कमला...

(कमला प्रवेश करती है)

कमला मैं पूछती हूं, आप चुपचाप इधर-आकर बैठ गये हैं और वे मुझे इस तरह आदेश दे रहे हैं जैसे मैं उनकी कोई मोल ली हुई बाँदी हूँ—'कमला पानी लादो,' 'कमला हाथ धुलादो', 'कमला यह करदो,कमला वह कर दो,' ये कौन हैं ? आप तो कहते थे, मैं इन्हें जानता तक नहीं, फिर ये क्यों इधर मुँह उठाये चले आते हैं ? इन्हें कोई और ठौर-ठिकाना नहीं ?

भोलानाथ (घबराकर और कंधे झाड़कर) अब बताओ······

(उठकर खड़ा हो जाता है ।)

आनन्द तुम ठहरो भाभी, मुझे सोचने दो ।

(उठकर माथे पर हाथ रखे सोचते हुए घूमते हैं ।)

कमला — आप सोच कर करेंगे क्या ? ये कोई इनके पुराने यार होंगे, मुझे इस बात से तो चिढ़ है कि आखिर ये मुझसे छिपाते क्यों हैं ? क्या मैं इनके मित्रों को घर से निकाल देती हूं ?

(चारपाई के किनारे बैठ जाती है।)

आनन्द — देखो भाभी...

कमला — मैं कुछ नहीं देखती आप देखिए ! आप से हमारा कोई पर्दा नहीं। हमारे पास कमरे दो हैं और फालतू बिस्तर एक भी नहीं, फिर आप भी यहां हैं। इनके वतनी तो बिस्तर बिछवा कर सो रहेंगे और मैं पड़ी ठिठुरा करूँगी बाहर बरामदे में।

आनन्द — देखो भाभी, ये इनके मित्र नहीं, यह मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं।

कमला — तो फिर ये उन्हें साफ़ जवाब क्यों नहीं देते ?

आनन्द — यदि इनसे यह हो सकता तब न ?

भोलानाथ — (जो इस बीच में इधर-उधर घूमता रहा है, रुककर कंधे झाड़कर) हाँ अब वतनी आदमी हैं...

कमला — वतनी हैं तो...

आनन्द — देखो झगड़ने से कुछ न बनेगा, इस आदमी को धता बताना चाहिए।

कमला — यही तो मैं कहती हूं !

आनन्द — यह इनसे हो चुका। इन अतिथि महोदय की खबर तो किसी दूसरी तरह ली जायगी।

(कुछ क्षण मौन—जिसमें आनन्द सोचते हैं और भोलानाथ अंगड़ाई लेता है, फिर—)

आनन्द — (धीमे स्वर में) मैं पूछता हूं वह कर क्या रहा है ?

कमला — शायद बाहर गया है।

आनन्द — (जिसे तरकीब सूझ गयी है चुटकी बजाकर) मैं कहता हूँ भामी तुम लिहाफ लेलो और चुपचाप लेट जाओ और यदि कराह सको तो

कुछ-कुछ समय के बाद कराहती भी जाओ (**भोलानाथ से**) देखो भाई, तुम कह देना कि मुझे भूख नहीं । मैं बहाना कर दूँगा कि जी भारी होने से मैं उपवास से हूँ और बस...

(सीढ़ियों से पाँवों की चाप आती है ।

आनन्द (**मुड़ कर**) मैं कहता हूं जल्दी करो । (**एक-एक शब्द पर जोर देकर**) ज...ल..दी करो, इन्हीं कपड़ों समेत लेट जाओ ?

(हाथ में दो लौकियां लिए बनवारीलाल प्रवेश करता है ।)

भोलानाथ आइए, आइए ! किधर चले गये थे आप ? ये हैं मेरे मित्र श्री० आनन्द, जालन्धर में प्रोफेसर हैं, यहां प्रिंसिपल गिरधारीलाल से मिलने आये हैं और (**बनवारीलाल की ओर संकेत करके**) ये हैं मि० बनवारीलाल मेरे वतनी ! किसी जमाने में प्रसिद्ध अभिनेता मास्टर रहमत के साथ...

आनन्द / बननवारी (**एक साथ**) आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई ।

(दोनों जरा हंसते हैं ।)

भोलानाथ ये आप क्या उठा लाये इतनी लौकियां ?...

(कमला धीमे से करहाती है ।)

बनवारी योंही नीचे चला गया था । बाहर बिक रही थीं, (**हंस कर**) मैंने कहा चलो...

(कमला तनिक और जोर से कराहती है ।)

बनवारी (**मुड़ कर और चौंक कर**) क्या बात है ? क्या बात है ?

(स्वर में चिंता)

भोलानाथ इन्हें अचानक दौरा पड़ गया, बड़ी मुश्किल से होश आया है । प्रायः पड़ जाया करता है दौरा...हिस्टीरिया...

बनवारी तो आप इलाज-उपचार...?

भोलानाथ इलाज उपचार बहुत हुआ। कर्नल...(फिर बात के रुख को बदल कर) ये तो बीमार पड़ गईं और (ज़रा हंसकर) लौकियाँ आप इतनी उठा लाये। (फिर आनन्द से) क्यों भाई आनन्द, तुम तो कहते थे...

आनन्द मैं तो आज उपवास से हूँ, तबीयत भारी है।

भोलानाथ मैं भी खाने की मूड† में नहीं।

बनवारी (अन्दर रसोई-घर की ओर पग उठाते हुए) तो लौकी की खीर...हिस्टीरिया में बड़ा लाभ करती है। और मैं पकाता भी अच्छी हूं। (जरा हंस कर) साथ ही अपने लिए भी दो रोटियां सेंक लूंगा और तरकारी भी लौकी ही की बन जायगी ? मेरा तो विचार है, आप भी खायें, मजा न आ जाय तो नाम नहीं। अन्दर अँगीठी तो होगी ही, कोयलों की आंच पर लौकी की खीर बनती भी ऐसी है कि क्या कहूं ?

(रसोई-घर में चला जाता है।)

आनन्द (धीरे से) यह ऐसे न जायगा।

बनवारी (रसोई-घर से) क्यों भई, मसाला कहाँ है ?

कमला (लेटे-लेटे) कह दो, समाप्त हो गया है।

भोलानाथ (जरा ऊंचे स्वर से) मसाला तो मित्र, समाप्त हो गया !

बनवारी (अन्दर से) और घी कहाँ है ?

कमला कह दो समाप्त हो गया है।

भोलानाथ (कंधे झाड़ कर) अब यह कैसे कह दूँ ?

आनन्द (भोलानाथ से, ऊंचे स्वर में) अरे घी नहीं लाये तुम, सवेरे ही भाभी ने कहा था कि घी खत्म हो गया है, कैसे गृहस्थ हो तुम !

(धीरे से, शरारत की हंसी हंसता है।)

†Mood

बनवारी अच्छा एक आने* का घी कम-से-कम आज के लिए तो लेता आऊँ। मसाला भी नहीं, और चीनी भी...मेरा ख्याल है... नहीं! और दूध भी...नहीं! मैं जाकर चन्द मिन्टों में सब लाया। ये जब तक कुछ खायँगी नहीं, कमजोरी दूर न होगी।

(चला जाता है।)

आनन्द (आश्चर्य से) यह विचित्र-अतिथि है जो अतिथि के साथ अतिथि-सेवक का कर्तव्य भी पूरा कर रहा है और अपनी जेब से!

भोलानाथ मैं कहता हूँ आनन्द यह जोंक है, कोई और तरकीब भिड़ाओ। पाँच आने खर्च कर देगा तो क्या हुआ! गत-वर्ष जाते-जाते मुझसे पाँच रुपये ले गया था।

कमला (चारपाई से उछल कर) दिये आपने पांच रुपये!

भोलानाथ (कंधे झाड़ कर) अब मैं...!

कमला और मैं पांच पैसे मांगती हूँ, तो नहीं मिलते।

भोलानाथ अब वतनी......!

कमला (क्रोध से) तो भुगतिये, पांच क्या मेरी ओर से पांच सौ दे दीजिए। बस मुझे मैके छोड़ आइए!

आनन्द (उल्लास से उछल कर) ओह (ताली बजाकर) स्प्लैंडिड⁂... मैके...ठीक है। जल्दी करो, भाभी को लेकर किसी पड़ोसी के यहां चले जाओ और वह आया तो मैं कह दूँगा, भाभी की तबीयत बहुत खराब हो गयी थी, आखिर भाई साहब उन्हें मैके छोड़ने चले गये—क्यों!

*नाटक यदि आज कल खेला जाय तो आज की मँहगाई के अनुसार एक आने के बदले चार या आठ आने कहना होगा। और ऐसे ही दूसरे परिवर्तन अनिवार्य्य होंगे। जैसे पांच के स्थान पर दस या बीस रुपये आदि आदि।

⁂ *splendid* = खूब

(प्रशंसा पाने की इच्छा से दोनों की ओर देखते हैं।)

भोलानाथ हाँ, यह तरकीब खूब है। (पत्नि से) तुम ज़रा अन्दर पड़ोसिन से बातें करना। मैं कुछ देर के लिए उनके पति के पास बैठक में बैठ जाऊँगा। (आनन्द से) किन्तु मित्र, कहता हूँ यदि वह न गया !

आनन्द उसके देवता भी जायेंगे। तुम्हारे जाते ही ताला लगाकर मैं भी खिसक जाऊँगा—बस !

कमला वाह ! ताला लगाकर आप चले जायँगे तो जो बर्तन वह ले गया है—वे ! नहीं आप यों कहना कि वे चले गये हैं, मैं भी जा रहा हूँ। बस निकाल कर घास-मण्डी तक छोड़ आना।

भोलानाथ घास-मण्डी तक ! यह ठीक है !

(ठहाका मारता है।)

आनन्द हाँ हाँ, पर तुम जल्दी करो, वह आ जायगा।

भोलानाथ हां हां जल्दी करो, (कमला को ट्रंक खोलने के लिए जाते देख कर) मैं कहता हूँ, नयी साड़ी पहनने की जरूरत नहीं, तुम सचमुच मैके नहीं जा रही हो ! और वे हमारे पड़ोसी तुम्हें इन कपड़ों में कई बार देख चुके हैं।

कमला (ट्रंक को जोर से बन्द कर उठते हुए) मैं पूछती हूँ...

आनन्द हाँ-हाँ, वहाँ पूछना चलो-चलो...

(दोनों को धकेलते हुए ले जाते हैं)

पर्दा

दृश्य दूसरा

उसी मकान का बरामदा

[बरामदा, एक ओर से, जिधर दर्शक बैठे हैं, खुला है। इस ओर बड़ी-बड़ी चिकें लगी हुई हैं जो खोल दी जाती हैं तो यह बरामदा एक लम्बा-सा कमरा बन जाता है। इस समय क्योंकि चिकें बन्द, छत के साथ लटक रही हैं, इसलिए बरामदे में क्या हो रहा है, इसे दर्शक भली-भांति देख सकते हैं।

दो हल्की-हल्की बेंत की कुर्सियाँ बरामदे में बायीं ओर रखी हैं। उन पर दो वर्ष से रोगन नहीं किया गया। कुर्सियों के आगे एक बेंत की ही तिपाई रखी है। जिस पर मैला सा, कुर्सियों के रंग का नीला कपड़ा बिछा है।

बायीं ओर एक दरवाजा है, जो सीढ़ियों पर खुलता है। सामने दो दरवाज़े हैं जो क्रमश: पहले दृश्य के दो कमरों को जाते हैं। रसोईघर शायद इन कमरों में परे अन्दर की ओर को है। दरवाजे पुरानी तर्ज के हैं और इनके ऊपर रोशनदान हैं, जिनके शीशे शायद अभी तक नहीं लगे या टूट गये हैं। हाँ, उनकी जगह गत्ते के टुकड़े लगे हुए हैं। दो खाली चारपाइयाँ दीवार के साथ खड़ी हैं।

एक कुर्सी पर मि० आनन्द बैठे हैं, दूसरी कुर्सी पर उनके पैर हैं। उनके दायीं ओर तिपाई पर जूठे खाली बर्तन रखे हैं।

उस समय जब पर्दा उठता है, वे सिगरेट सुलगाने की फ़िक्र में हैं।]

आनन्द (उस दियासलाई को धरती पर पटक कर जो बुझ गई है) हुं!

(भोलानाथ सीढ़ियों के दरवाजे से झांकता है।)

भोलानाथ मैं कहता हूं, हमें वहां बैठे-बैठे एक घंटा हो चुका है और तुमने अभी तक आवाज़ नहीं दी।

(उछल कर आनन्द उसके पास जाते हैं।)

आनन्द मैं कहता हूँ, धीरे-बोलो, वह रसोई-घर में बैठा खाना खा रहा है।

(दोनों बरामदे के बीच में आ जाते हैं।)

भोलानाथ (बर्तनों की ओर देख कर) और यह तुम ?...

आनन्द मैंने भी उपवास खोल लिया। कम्बख्त, लौकी की खीर तो ऐसी स्वादिष्ट बनाता है कि क्या कहूं।

भोलानाथ परन्तु...

आनन्द परन्तु क्या ? जो तय हुआ था, उसके अनुसार ही मैंने सब-कुछ किया। पर वह एक ही दुष्ट है।

भोलानाथ (सोचते हुए) तो गया नहीं ?

आनन्द वह इस तरह आसानी से न जायगा, ऐसे को साफ जवाब...

भोलानाथ परन्तु शिष्ठता भी कोई चीज़ है...तुम नहीं समझते आनन्द !

(सिर खुजाते हुए कमरे में घूमने लगता है।)

आनन्द साफ जवाब नहीं दे सकते तो भुगतो !

भोलानाथ तुमने उससे कहा नहीं कि भाभी की तबीयत...

आनन्द कहा क्यों नहीं । जब वह सब चीज़ें वापस लेकर आया तो मैंने बुरा-सा मुंह बनाकर कहा—भाभी की तबीयत तो बड़ी ख़राब हो गयी। उन्होंने कहा कि मैं तो मैके जाऊंगी, और वे ठहरे बीवी के गुलाम उसी क्षण लेकर चले गये ।

भोलानाथ (अत्यन्त क्रोध में) बीवी के ग़ुलाम !

आनन्द (हंसकर और भी धीरे से भेद भरे स्वर में) अरे वह तो मैंने केवल बात बनाने के लिए कहा था ।

भोलानाथ (दिल ही दिल में क्रोध के घूंट पीकर) हुं !

आनन्द यह कह कर मैं ताला उठाने के लिए बढ़ा और वह रसोईघर में चला गया । मैंने ताले को हाथों में उछालते हुए कहा—मैं तो जा रहा हूं । कहने लगा—खाना तो खाते जाइएगा, लौकी की खीर का मज़ा...

भोलानाथ और तुम्हारे मुंह में पानी भर आया ?

आनन्द नहीं, मैंने कहा—मैं तो जाऊंगा ।

भोलानाथ फिर ?

आनन्द उसने बेफ़िक्री से अंगीठी में कोयले डाल कर उन्हें सुलगाते हुए कहा—अच्छा तो हो आइए, पर आ जाइएगा जल्दी, टण्डी खीर का क्या मज़ा आयगा ?

भोलानाथ (गुस्से से दांत पीसकर) हुं !

आनन्द तब मैंने दिल में सोचा कि यह इस तरह न जायगा । कोई दूसरी तरकीब सोचनी पड़ेगी । चाहिए तो यह था कि मैं ताला लगाकर बाहर बरामदे में मिलता, पर भाभी की दो तश्तरियों ने...

भोलानाथ (आकुलता से) फिर-फिर...?

आनन्द फिर क्या, मैंने सोचा कि इन्हें यहां छोड़ कर घर से नहीं जाना चाहिए, कहीं कोई चीज ही न उठा कर चम्पत हो जायं, इसलिए

बात बदल कर मैंने कहा—वैसे जाने की मुझे कोई जल्दी नहीं। यह आपने ठीक कहा कि खीर का मज़ा ताज़ी पकी ही में है। लाइए देखें तो सही आप खीर कैसी बनाते हैं ? बस, उन्होंने खीर तैयार की, लौकी ही की सब्ज़ी बनायी और हल्की-हल्की रोटियां सेंकी—कम्बख्त ग़ज़ब की रसोई बनाता है।

भोलानाथ (कंधे झाड़ कर निराशातिरेक से) अब...

(सिर नीचे किये घूमता है।)

आनन्द अब क्या, तुम भी निश्चिन्त होकर चढ़ा जाओ। भूखे पेट कुछ न सूझेगा, तर माल अन्दर जाय तो...

[अन्दर कमरे से बनवारी रूमाल से हाथ पोंछता हुआ प्रवेश करता है।]

बनवारी (चौंक कर) अरे ! गये नहीं आप ?

भोलानाथ (जैसे कब्र से) गाड़ी मिस कर गये।

बनवारी और कमला जी...?

भोलानाथ (चिढ़ कर) उन्हें फिर दौरा पड़ गया।

बनवारी (गम्भीरता से) ओहो, तो कहां...

भोलानाथ वेटिंग-रूम में बिठा आया हूँ। दूसरी गाड़ी देर से जाती थी, इसलिए...

बनवारी (खेद के साथ अन्दर को मुड़ता हुआ) एक डिब्बे में खीर डाल कर बन्द किये देता हूँ। साथ ले जाइए, विश्वास कीजिए, लौकी की खीर हिस्टीरिया के दौरे में बड़ा लाभ करती है और फिर वे प्रातः से भूखी भी तो होंगी।

भोलानाथ (क्रोध को छिपाते हुए) नहीं, कष्ट न कीजिए, मैं दवाई के साथ थोड़ा-सा दूध पिला आया हूं।

बनवारी आप ही लीजिए (आनन्द की ओर देख कर) क्यों प्रोफेसर साहब, इन्होंने भी तो सुबह का...?

भोलानाथ (अन्यमनस्कता) मैं तो खाने के मूड में नहीं !

बनवारी (खिन्न हुए बिना) क्यों न हो (तनिक हंस कर) वह एक बार किसी ने एक साधू से पूछा था — खाने का ठीक समय कौन सा है ? उसने उत्तर दिया — सम्पन्न का जब मन हो और विपन्न को जब मिले । आप ठहरे धनी-मानी और हम (हिं हिं करते हुए) निर्धन ! अच्छा, पान तो लेंगे न ?

भोलानाथ (रूखेपनसे) मैं पान नहीं खाता ।

बनवारी (मुस्करा कर) और आप प्रोफेसर साहब ?

आनन्द (जो बहुत खा गया है) मुझे कोई आपत्ति नहीं ।

बनवारी अच्छा मैं नीचे पनवाड़ी से पान ले आऊं । (बेपरवाही से हंसते हुए चला जाता है ।)

भोलानाथ (कन्धा झाड़ कर) मैं कहता हूँ अब...?

आनन्द (चुप ?)

भोलानाथ (आकुलता से) आखिर अब क्या किया जाय ? वह कब तक पड़ोसी के यहां बैठी रहेगी ? तुम तो मजे से खाना खाकर कुर्सी पर डट गये हो और हमारी आंतें...

आनन्द भई खाना खाने के बाद मेरी तो सोचने समझने की शक्तियां जवाब दे जाती हैं, मैं तो सोऊंगा ।

(उठते हैं)

भोलानाथ पर तुम कहते थे, इसकी खबर लूंगा...

आनन्द (फिर बैठ कर) वह तो जरूर लूंगा, पर दो-चार क्षण आंख लग जाय तो कुछ सूझे ।

[तन्द्रिल आंखों से भोलानाथ की ओर देखते और हंसते हैं। भोलानाथ निराश-सा हाथ कमर के पीछे रखे सोचता हुआ घूमता है।]

भोलानाथ उठो, हो चुका तुम से। बाहर ताला लगाये देते हैं। स्वयं रो-पीट कर चला जायगा। हम दोनों किसी होटल में खाना खा लेंगे।

आनन्द (कुर्सी पर पीछे की ओर लेट कर जमाही लेते हुए) तो फिर मुझे क्यों घसीटते हो? मुझे नींद लगी है।

(फिर कुर्सी से उठते हैं।)

भोलानाथ (जो बहुत तेज़ी से कमरे में घूम रहा है, अचानक रुक कर) आखिर क्या मतलब है तुम्हारा?

आनन्द (फिर कुर्सी में धंस जाते हैं) अरे भई तुम बाहर ताला लगा कर जाना चाहते हो, लगा जाओ—उस दूसरे कमरे को अन्दर से बन्द कर जाओ और इस कमरे में बाहर से ताला लगा दो। मुझे तीन बजे प्रिंसीपल गिरधारीलाल से मिलने जाना है। तब मैं उस कमरे से निकल कर बाहर से ताला लगाता जाऊंगा! अब जल्दी करो नहीं तो वह आ जायगा।

(उठ कर बायीं ओर के कमरे में चले जाते हैं।)

आनन्द (अन्दर से) लो, मैं तो लेट गया। अब पान स्वप्न ही में खाऊंगा।

[भोलानाथ कुछ क्षण तक घूमता है फिर तेजी से वह भी अन्दर चला जाता है। उसकी क्रोध से भरी चिड़चिड़ी आवाज आती है।]

भोलानाथ ताला कहां है? मैं कहता हूं—ताला कहां है?...कम्बख्त ताला... मिल गया! मिल गया!!

[ताला हाथ में लिये आता है और अंगुली में कुंजी घुमाता है।]

आनन्द (अन्दर से) अरे देखो यह उसका बैग बाहर रखते जाओ, नहीं इसी बहाने आ जायगा।

[भोलानाथ फिर अन्दर जाता है और कपड़े का एक पुराना भरा-सा हैंड-बेग लेकर आता है। हेंड-बेग को बाहर दीवार के साथ टिका देता है और दरवाजा बन्द करके ताला लगाने लगता है कि अन्दर से प्रोफेसर आनन्द की आवाज आती है।]

— सुनो-सुनो।

भोलानाथ (फिर जल्दी से किवाड़ खोल कर) कहो!

आनन्द अरे बर्तनों को तो अन्दर रखते जाओ!

(भोलानाथ शीघ्रता से बर्तन उठा कर देता है।)

आनन्द (बर्तन लेकर) और यह तिपाई और कुर्सी भी दे दो।

[भोलानाथ जल्दी-जल्दी तिपाई और कुर्सियाँ देता है, फिर जल्दी-जल्दी ताला लगाता है। जल्दी में चारपाई से ठोकर खाता है और बड़बड़ाता हुआ चला जाता है।
कहीं बाहर घड़ियाल 'टन' 'टन' करते दो बजाता है।
बनवारीलाल मुंह में पान दबाये और कागज में लिपटी पान की एक गिलौरी एक हाथ में थामे दाखिल होता है।]

बनवारी (दरवाजे लगे हुए देख कर आवाज देता है) भोलानाथ! भोलानाथ!

[फिर कमरे में ताला लगा और बाहर अपना बैग पड़ा देख कर चौंकता है, मुस्कराता है। फिर अपने आप]

खैर अभी तो मैं सोऊँगा!

[चारपाई बिछाता है, जो दूसरे कमरे के दरवाजे को बिलकुल रोक लेती है। उसपर लेटकर सिगरेट सुलगाता है और एक दो कश लगा करवट बदल लेता है।]

(पर्दा गिरता है।)

[कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है और बनवारीलाल गहरी नींद में सोया दिखायी देता है, उसके खर्राटों की आवाज साफ सुनाई देती है।]

(पर्दा)

दृश्य तीसरा

[पर्दा धीरे-धीरे उठता है। दृश्य वही। बनवारीलाल करवट बदलता है। अन्दर घड़ी में तीन बजते हैं, वह धूप की ओर देखता है।]

बनवारी (अपने आप से) ओह, धूप कहां चली गयी ?

[ऊपर रोशनदान का गत्ता हिलता है और किसी का हाथ बाहर निकलता है। वह चुपचाप करवट बदल लेता है।
धीरे-धीरे गत्ते को हटा कर प्रो० आनन्द सूट-बूट पहने रोशनदान में से बड़ी कठिनाई से उतरने का प्रयास करते हैं]

बनवारी (जैसे किसी की आहट से चौंक कर) कौन है ? (फिर चौंक कर और उठकर) कौन, कौन रोशनदान से अन्दर दाखिल होने का प्रयास कर रहा है ? (शोर मचाता है) चोर...चोर दौड़ियो...भागियो ?

आनन्द मैं हूँ आनन्द।

(आवाज गले में फंसी हुई सी है)

बनवारी (पूर्ववत् स्वर में घबराहट लाकर) चोर...चोर...दौड़ियो... भागियो !!

[चार-पाँच आदमियों के भागते आने का स्वर। एक मारवाड़ी एक हिन्दुस्तानी और दो एक पंजाबी सीढ़ियों से प्रवेश करते हैं।]

मारवाड़ी (जिसकी साँस अभी फूल रही थी) काईं छे बाबू शाब, काईं छे* ?

हिन्दुस्तानी क्या बात है भाई, क्या बात है ?

पंजाबी (सब को पीछे धकेलकर) की गल्ल ऐ, की गल्ल ऐ, किद्धर चोरी होई है, किद्धर ‡ ?

बनवारी (आनन्द की ओर संकेत करके) यह देखिए आजकल के जंटलमैन बेकार। कोई काम न मिला तो यही व्यवसाय अपना लिया। दिन दहाड़े डाका डाल रहे हैं। मेरे मित्र हैं न पंडित भोलानाथ। मैं उनसे मिलने के लिए आ रहा था। देखता हूँ तो ये अन्दर घुसे जा रहे हैं। यह बैग शायद पहले निकाल कर रख चुके थे। (व्यंग्य से आनन्द की ओर देखकर) उतरिए महाशय, अब जरा चन्द दिन बड़े घर की रोटियाँ तोड़िए।

हिन्दुस्तानी (आगे बढ़कर) यह बैग उठा रहे थे।

बनवारी न-न इसे हाथ न लगाइएगा। इस में सब गहने भरे होंगे। पुलिस ही आकर खोलेगी।

आनन्द (जो बिलकुल घबरा गया है) मैं...मैं...

मारवाड़ी अबे साला, मैं-मैं क्या, नीचे तो उतर ! मार-मार कर भूँस बनादेंगे !

हिन्दुस्तानी (दार्शनिक भाव से) आजकल की बेकारी ने नौजवानों को चोर और डाकू बना दिया है !

---

*क्या है बाबू साहब क्या है ?

‡क्या बात है, क्या बात है, किधर चोरी हुई है, किधर ?

पंजाबी ओए, उत्तर ओए ! ओथेई की टंग हो गया ऐं । सूट तां वेखो जिवें नाहूडूखां दा साला होंदा ऐ ! †

[आगे बढ़ कर आनन्द को पांव से पकड़ कर घसीटता है। वह धम से फर्श पर आ गिरता है। पंजाबी युवक दो चार चौरस थप्पड़ उसके मुंह पर लगा देता है।]

आनन्द (क्रोध और अपमान से जलकर) मैं पंडित भोला नाथ का मित्र प्रो० आनन्द...

पंजाबी चल चल प्रोफेसर दा बच्चा; जाके थानेवालयाँ नू दस्सीं कि तू प्रोफेसर हैं जाँ प्रिंसिपल ! +

(सब ठहाका मारते हैं।)

बनवारी मैं भी तो उनका मित्र हूँ, लेकिन उनकी अनुपस्थिति में मकान तो नहीं तोड़ता फिरता ।

मारवाड़ी आजकल जमानो ऐसोई छै बाबू जी ! काई करयो जाय । ⊙

बनवारी (गर्ज कर) क्या किया जाय ! मैं अभी पुलिस को टेलीफोन करता हूँ। आप इसे पकड़ रखें (जाते हुए) और देखिए बैग को हाथ न लगाइएगा ।

[कई और व्यक्ति आते हैं]

आनेवाले क्या बात है ? क्या हुआ ? क्या हुआ ?

मारवाड़ी यह चोर चौड़े-दिहाड़े चोरी कर रिहो छो शाब !❀

---

† अबे उतर, वहां ही क्या टंग गया है, सूट तो देखिए जैसे नाहूडूखां का साला होता हो।

+ चल चल प्रोफेसर का बच्चा, जाकर थानेवालों को बताना कि तू प्रोफेसर है या प्रिंसिपल !

⊙ आजकल का जमाना ऐसा ही है बाबू जी, क्या किया जाय ।

❀ यह चोर दिन दहाड़े चोरी कर रहा था साहब !

हिन्दुस्तानी (व्यंग्य से) जन्टलमैन चोर !

आनन्द मैं कहता हूँ...

पंजाबी (एक और थप्पड़ जमा कर) तूं की कहनाएँ, नाले चोर नाले चतुर !×

(भीड़ को चीरता हुआ भोलानाथ आता है ।)

भोलानाथ क्या बात ? क्या बात ?

मारवाड़ी बच गया छे शाब, थाके चोरी कर रह्यो छो ।†

हिन्दुस्तानी समझिये बच गये। आपके मित्र ने इसे ठीक मौके पर चोरी करते हुये पकड़ लिया ।

आनन्द (जिसका साहस भोलानाथ के आने से बढ़ गया है) मैं कहता हूँ...

मारवाड़ी (लपक कर) तूं काईं छे ।❀

हिन्दुस्तानी (अदा से) यह कहता है...

पंजाबी ऐह केहँदा ऐ (चबा-चबा कर) नाले चोर, नाले चतुर! ऐह हैंड बैग किथे लै चलिया सू...*

(सब हँसते हैं ।)

भोलानाथ (बढ़ कर पंजाबी की गिरफ्त से आनन्द को छुड़ाता हुआ) छोड़िए छोड़िए, आप सब जाइए । ये मेरे मित्र हैं, मैं इनसे निपट लूँगा ।

हिन्दुस्तानी लेकिन चोरी...

× तू क्या कहता है, चोर और फिर चतुर

† साहिब बच गये आप, यह आपके चोरी कर रहा था ।

❀ तू क्या कहता है ।

* यह हैंड बैग कहाँ ले चला था ।

भोलानाथ मैं कहता हूँ, इन्होंने कोई चोरी नहीं की। आप जाइए। मेरी पत्नी को आना है और आप सीढ़ियाँ रोके हैं।

(सब बड़-बड़ाते हुए चले जाते हैं।)

पंजाबी **(रुक कर)** पर ओह बाबू †

भोलानाथ **(चीख कर)** वह शैतान गया नहीं?

(पंजाबी जल्दी-जल्दी चला जाता है)

आनन्द वह तो पुलिस में रिपोर्ट लिखाने गया है।

भोलानाथ आखिर क्या हुआ?

आनन्द होता क्या, सब उसकी बदमाशी है।

भोलानाथ आख़िर बात क्या हुई?

आनन्द होती क्या? तुम्हारे जाने के बाद मैं लेट गया तो कुछ ही देर बाद वह आया। पहले तुम्हें आवाजें दीं, फिर शायद ताला देख बड़बड़ाया। चारपाई घसीट कर बिलकुल उस दरवाजे के आगे बिछा कर लेट गया। मैं...

भोलानाथ तुम्हारे साथ ऐसा ही होना चाहिए था, कहा न था कि चलो हमारे साथ।

आनन्द साढ़े तीन बजे मुझे प्रिंसिपल साहब से मिलना था। आखिर प्रतीक्षा करके मैं तैयार हुआ, पर जाऊँ किधर से? मैं तिपाई पर चढ़ कर रोशनदान तक चढ़ा, फिर उतरने लगा था कि उसे बाहर ही सोते छोड़ कर चल दूँ।

भोलानाथ और वह तुम्हारा भी गुरू निकला! मैंने कहा था न कि अव्वल दर्जे का पाजी है?

आनन्द उसने तो शोर मचा दिया, इतने आदमी इकट्ठे कर लिए और

---

† **पर वह बाबू।**

उस पंजाबी ने तो कई थप्पड़ मेरे मुँह पर जड़ दिये।

(बनवारी प्रवेश करता है।)

बनवारी (जैसे कुछ जानता ही नहीं) ये विचित्र दोस्त हैं आपके। यह तो सब कुछ उठा कर ही ले चले थे।

भोलानाथ आपको शर्म नहीं आती, ये तो अन्दर ही थे।

बनवारी पर मुझे क्या पता था, मैंने आवाज़ें दीं, ये बोले तक नहीं।

भोलानाथ सो रहे होंगे।

बनवारी तो जब जगे थे, तब मुझे आवाज देते, रोशनदान से उतरने की क्या आवश्यकता थी...?

भोलानाथ अच्छा हटाइये इस मामले को। कमला की तबीयत खराब हो रही है। मैं इसी गाड़ी से उसे गुरदासपुर ले जाऊँगा। चलो आनन्द तुम मेरे साथ चलो। अब प्रिंसिपल साहब से कल मिल लेना।

बनवारी आप गुरदासपुर जा रहे हैं। आपका ससुराल तो नवाँ शहर है?

भोलानाथ वहाँ कमला के बड़े भाई रहते हैं।

बनवारी (चौंक कर) भाई!

भोलानाथ म्युनिसिपल कमेटी में हैड क्लर्क हैं।

बनवारी म्युनिसिपल कमेटी में (उल्लास से हल्की सी ताली बजाकर) यह आपने अच्छी खबर सुनायी। मैं स्वयं परेशान था। वहाँ म्युनिसिपल कमेटी में मुझे काम है। गुरदासपुर में मेरा कोई परिचित नहीं था। अब आप साथ होंगे तो सब कुछ सुगमता से हो जायगा। ठहरिए मैं यह बैग उठा लूँ।

(बढ़ कर बैग उठाता है)

पर्दा

झाँकी

संकलन त्रय की सीमाओं में आवद्ध एकांकी का शुद्ध रूप जिसमें जीवन की किसी एक घटना, अनुभव, परिस्थिति अथवा एक उदीप्त क्षण का चित्रण होता है। प्रस्तुत झाँकी ऐतिहासिक एकांकी का उदाहरण भी है।

ममता और कर्त्तव्य

पात्र

शुद्धोदन	कपिलवस्तु के नरेश
बुद्ध	महाराज शुद्धोदन के पुत्र
यशोधरा	गौतम की पत्नि
राहुल	बुद्ध का पुत्र
सुनन्दा	यशोधरा की सखि



[कपिल वस्तु में महाराज शुद्धोदन के राजप्रासाद में यशोधरा का विश्राम कक्ष। प्रवेश करते ही सामने मध्य में स्थित एक मंच है जिस पर एक वीणा पड़ी है। दाईं ओर एक चित्रपट है जो गेरुए रंग के एक शुभ्र वस्त्र से ढका हुआ है। पास ही एक कूंची और कुछ रंग पड़े हैं। बाईं ओर एक पीढिका पर पुष्प रखे हैं जो कुम्लाए से जान पड़ते हैं। कोण में रखा हुआ दीपदान ऊषा के प्रकाश में शङ्कित और लज्जित खड़ा है। प्रातःकाल का समय है। बालरवि की अरुण रश्मियां प्रवेश द्वार के साथ की खिड़की से झांक कर मंच पर बैठी यशोधरा के मुख पर पड़ रही हैं। यशोधरा ने संदली रंग की साढ़ी पहनी है जो कंधों से नीचे खिसक गई है। बाम कर्ण कुंडल में बाल उलझ रहे हैं। एक-टक शून्य में देख रही है जाने चिन्ता के सागर का कोई छोर ही नहीं। मालिन आकर कुम्लाए फूलों के स्थान पर नये पुष्प रख जाती है। यशोधरा का ध्यान टूटता है। वह उठकर सामने की खिड़की का एक द्वार बन्द करके वहीं खड़ी हो जाती है। उसकी सखि सुनन्दा उसके पीछे आकर चुपचाप खड़ी हो जाती है।]

यशोधरा — सुनन्दा, अम्बर को तारों से प्रिय कौन होगा! निर्निमेष नयनों से रात-रात भर उनका शृंगार करता है। किन्तु यह उषा देखी तुमने?

सुनन्दा — उषा की अरुणिमा पर अम्बर उन असंख्य तारिकाओं को न्योछावर कर देता है।

यशोधरा (मुड़कर) यह क्या कहा तुमने ?

सुनन्दा तभी तो नवविहान का जन्म होता है सखि ?

यशोधरा तारिकाओं के रक्तदान से ?

सुनन्दा हां।

यशोधरा तो उषा की सुन्दरता का मूल्य तारिकाओं के प्राणों से भी अधिक है क्या ?

सुनन्दा यह बात नहीं सखी। प्रश्न तो आलोक के सृजन का है।

यशोधरा (फिर शून्य में देखते हुए) आलोक का सृजन ! सुनन्दा।

सुनन्दा हां सखि !

यशोधरा उस दिन भी ऐसा ही आलोक था धरणि और अम्बर पर छाया हुआ ! आंखों ही आंखों में वे असंख्य पल जुड़कर अब तो कितने क्रूर वर्षों में परिणत हो गये हैं।

सुनन्दा किन्तु...

यशोधरा (सुनन्दा की बात अनसुनी करके) ऐसे ही आलोक में उन्होंने छन्दक के हाथ वह सन्देश भेजा था।–और भेजा था अपने वैराग्य का प्रतीक वह केशजाल। उन केशों की कालिमा से मेरे जीवन का दिन-मान एक अनन्त रजनी में विलीन हो गया था सखि। और आज जीवन के इस निर्मम अंधियारों में...(एक निश्वास)

सुनन्दा किन्तु सखि...

यशोधरा हां सुनन्दा, अंधियारा निर्मम न होता, तो वे मुझे उस काल रजनी में सोती छोड़ कर चले जाते ? और उनके जाने के पश्चात्... (कण्ठावरोध) रात भी सभी के लिये रात नहीं होती सुनन्दा, पर मेरे लिये तो दिन भी रात ही बन गया है। (तनिक मुड़कर) यह अंशुमाली ! यह प्रकाश-पुँज ! यह जो तुम देख रही हो सुनन्दा, मुझे अपनी निराशा से भी अधिक काला अंधकार वृत्त दिखता है।

[सुनन्दा आंखों से आंसू पोंछती हुई मंच पर जा बैठती है। यशोधरा मुड़कर उसी ओर देखती है]

धरा बड़ी कठोर हूँ मैं सुनन्दा कि मेरे कारण तुम्हारी आंखें भी गीली हो गईं।

न्दा नहीं नहीं! किन्तु मैं यह पूछती हूं कि दिन रात की इस दारुण व्यथा का अन्त कब होगा? जीवन का क्रम कैसे चलेगा?

धरा चल तो रहा है सुनन्दा! रात आती है तो ऐसा लगता है जाने वह अपने शयनागार में सो रहे हों। इन वर्षों में रात को कई-कई बार उठकर उन्हें वहां देखने गई हूं कि वे चले तो नहीं गये। और फिर ऐसा लगता है जाने वे मेरे इस कक्ष में आए, अन्तिम बार मुझे देखा और बोले—मैं जा रहा हूं यशो। **(कंठावरोध)** वे मुझे इतना ही कह जाते। वे मुझे इतना ही कह जाते सुनन्दा। उन्होंने मुझे अपने मार्ग की बाधा क्यों समझा सखि? इस एक बात से प्राण तक रो उठे हैं। **(कण्ठावरोध; आंखों का जल साड़ी के छोर से पोंछती हुई मंच के समीप आकर चित्रपट का आच्छादन हटा देती है। कूंची पकड़ कर पीठिका पर बैठ जाती है।]**

नन्दा यह चित्र?

शोधरा हां।

नन्दा किन्तु यह केश और उन पर यह कषाय।

शोधरा कितना सुन्दर लगता है सुनन्दा।

नन्दा और यह राहुल कितना भला लगता है उनके समीप!

शोधरा अब मुझे अपना चित्र बनाना शेष है।

नन्दा **(यशोधरा की बात न सुनकर)** किन्तु राहुल ने कषाय नहीं पहना।

शोधरा **(उत्तेजित होकर)** नहीं सुनन्दा, यह कभी नहीं हो सकता **(उठते हुए)** राहुल कषाय नहीं पहनेगा। राहुल कषाय नहीं

पहनेगा। (कूंची से राहुल के चित्र को रंग से मिटा देती है।) राहुल कषाय नहीं पहनेगा।

सुनन्दा तुमने राहुल का चित्र मिटा दिया! कैसा पागलपन है?

यशोधरा नहीं सुनन्दा, वह अकेले गये थे। उन्हें अकेले ही रहना चाहिए सखि।

[चित्रपट पर आच्छादन डालकर फिर खिड़की के समीप खड़ी हो जाती है। सुनन्दा भी पास ही जा खड़ी होती है।

सुनन्दा कहां गया है राहुल?

यशोधरा महाराज के साथ रहता है दिन भर। अब तो वही उनके बुढ़ापे का सहारा हुआ न? वे उसकी हर बात बड़े ध्यान से सुनते हैं। हर बात का एक विशेष अर्थ लगाना चाहते हैं। और वह भी जाने कैसे कैसे प्रश्न करने लगा है।

सुनन्दा क्या पूछता है?

यशोधरा अभी उस दिन कह रहा था—दादा आपके श्वेत बाल क्यों उग आए?—दादा तो कांपने लगे। राहुल को हृदय से चिपकाकर बोले—बेटा, क्या तुमने जरा, व्याधि, मरण देखे हैं?

सुनन्दा राहुल क्या बोला?

यशोधरा बोला—'नहीं दादा'। तब तो दादा हँसे। खूब हँसे और बोले, "कभी मत देखना! राहुल, कभी मत देखना!" किन्तु वह भी तो राहुल ठहरा। भागा भागा मेरे पास आया और पूछने लगा—माँ, जरा, व्याधि, मरण, कैसे होते हैं?

सुनन्दा (मुस्करा कर) बड़ा चालाक है।

यशोधरा तुम हँसती हो सुनन्दा। मेरे हृदय में तो उस प्रश्न से एक कांटा सा गड़ गया है। मैं सोचती हूँ...मैं सोचती हूँ...मैं जाने क्या क्या सोचती चली जाती हूं।

[राहुल का प्रवेश। घुंघराले केश, रेशमी धोती और रेशमी ही अंगरखा पहना है ।. गोल चेहरा, सुगठित शरीर, आते ही यशोधरा को लिपट कर]

ल तूने नहीं सुना माँ ? माँ वे आ रहे हैं। पिताजी आरहे हैं। भगवान् आरहे हैं माँ।

धरा क्या कहा ?

ल हां, हां। वे आरहे हैं। उन्हें आने दो माँ। मैं उनसे...

धरा (राहुल की बात काटकर) किन्तु तुमसे किसने कहा ?

ल दादा ने उन्हें कहलवा कर भेजा था—बेटा, तुम जिस ज्ञान का प्रकाश लेकर संसार को मार्ग दिखा रहे हो, उससे कपिलवस्तु ही क्यों वंचित रहे।

न्दा कब लिखा था दादा ने पत्र।

ुल कल, और आज उनका संदेश आ गया हैं कि हम आरहे हैं। (यशोधरा की ओर देखकर) माँ, तुम चुप क्यों खड़ी हो। नगर के कोने कोने में प्रसन्नता का सागर लहरा उठा है। तुम ही क्यों मौन हो गई हो। वर्षों से तुम इसी घड़ी की तो प्रतीक्षा कर रहीं थीं। और आज वह घड़ी आई है तो तुम्हारी निराशा...

शोधरा नहीं राहुल, मैं बहुत प्रसन्न हूं।

हुल तुम बहुत प्रसन्न हो माँ। मैं उनसे कहूँगा "यह कहां का न्याय था कि आप हमें सोते छोड़ कर चले गये।" तुम्हीं ने तो कहा था मां— ममता हेय हो सकती है, कर्त्तव्य तो हेय नहीं। क्या उनका कर्त्तव्य नहीं था कि...

शोधरा नहीं बेटा, ऐसा कभी न कहना। उन्हें ऐसा कभी न कहना। वे अब केवल हमारे ही न हो कर समस्त विश्व के हो गये हैं। उन्हें अब

कोई भी उतना ही अपना कह सकता है जितना हम । (निचला ओठ काट कर आंसुओं को रोकने का प्रयत्न करती है ।)

राहुल मां !

यशोधरा हां बेटा वे बहुत बड़े हैं । पहले वे केवल एक राजकुमार थे । एक लघुराज्य के स्वामी और अब (मुस्कान) अब वह विश्व के आराध्य हैं । प्रकाश के अजस्र स्रोत । (राहुल को चूम कर) अच्छा बेटा, जाओ खेलो ।

राहुल नहीं जाऊँगा मां । तुम्हीं सोचो तुम्हारी आंखों में ये अश्रु बिन्दु देख कर मेरा जी खेलने को चाहेगा क्या ?

यशोधरा (राहुल को चूम कर) तो देखो मैं हंसती हूँ । (मुस्कुरा कर) और यह देखो, मैं वीणा बजाती हूँ । (वीणा उठा कर बजाने का नाट्य करती है) ।

राहुल ठीक है मां । अब मैं खेलने जाता हूँ ।

(प्रस्थान)

सुनन्दा कितना कुशाग्र बुद्धि है ।

यशोधरा देखा तुमने सुनन्दा ! (सूर्य की कठोर रश्मियां खिड़की से आती देख कर खिड़की का द्वार बन्द करने जाती है) सुनन्दा अब तुम भी चलो । देखो सूर्य सिर पर आ चला है ।

(सुनन्दा का प्रस्थान)

यशोधरा (वीणा पर अंगुली रखी है; किसी गहरी चिन्ता में विलीन है) ममता हेय हो सकती है, कर्त्तव्य तो हेय नहीं ।

[बाहर कोलाहल; प्रजावती का प्रवेश; खिला हुआ मुख मंडल]

प्रजावती बेटी, वीणा पर इस प्रकार अंगुली रख देने भर से क्या होगा । इसे बजाती क्यों नहीं । इसके तारों को कम्पन से झंकृत कर दो आशा भरा संगीत । वह संगीत जिसमें युग युग की निराशा का मौन डूब जाय ।

[यशोधरा को निर्निमेष पृथ्वी में देखते हुए देख कर तथा झुक कर] ओह, तुम इतनी उदास बैठी हो। जानती नहीं वह आरहे हैं। सिद्धार्थ आज बुद्ध होकर आरहे हैं। तथागत होकर आरहे हैं। उन्होंने नगर के सिंहद्वार में प्रवेश किया है। वे भिक्षापात्र लेकर आज अपनी ही जन्मभूमि में आए हैं बेटी।

धरा (विस्मय का नाट्य करके) क्या कहा ? भिक्षापात्र लेकर ?

वती हां, यशो। भिक्षापात्र लेकर। उनकी अगवानी की तैयारी करो बेटी। राहुल तो फूले नहीं समा रहा हैं। उठो, देखो मुझे तो बहुत काम है। शीघ्रता करो।

(प्रस्थान)

ोधरा (धीरे धीरे खिड़की के पास जाकर) वे भिक्षापात्र लेकर आ रहे हैं। क्या दे सकूँगी उन्हें। (हृदय पर हाथ रख कर) दिल की धड़कन एकाएक तीव्र क्यों होती जा रही है। दिल जाने बैठा जा रहा है। कैसी छलना है! वे नहीं आए थे तो प्रतीक्षा का एक एक क्षण जाने कैसे बीता था! अब वे आए हैं तो हृदय-कपाट मुँदे से जा रहे हैं।

(सुनन्दा का प्रवेश)

नन्दा चित्रवत् खड़ी हो यशो। प्रभु आए हैं। चलो न उनकी अगवानी करो। उनके स्वागत के लिए सारा नगर पलक पांवड़े बिछा रहा है। उस जन-समूह में केवल एक तुम्हीं नहीं हो।

शोधरा सुनन्दा।

ुनन्दा हाँ।

शोधरा अपने ही हाथों अपने स्वामी रणक्षेत्र में भेजने वाली क्षत्राणियां मन के द्वार उन्मुक्त कर उनकी अगवानी करती हैं; किन्तु······

सुनन्दा किन्तु तुमने स्वयं तो उन्हें नहीं भेजा था— यही कहना चाहती हो न!

यशोधरा हां सुनन्दा। वे-वे...वे तो जाने मेरी छाया से भी दूर-दूर होकर चले गये। जाने मैं क्या थी ?

सुनन्दा तो अब मान करने की ठानी है ?

यशोधरा (सूखी हंसी हंस कर) नहीं सुनन्दा ! पाँव उठाती हूँ; किन्तु हृदय साथ नहीं देता। तुम्हीं सोचो मुझसे अधिक प्रसन्न आज कौन होगा, जिसके देवता बुद्ध होकर लौटे हों ! उनके प्रकाश की अमर किरन से विश्व का कितना मंगल होगा। सृष्टि में जब लोग उनका नाम लिया करेंगे, तो साथ साथ बुद्ध की यशो के लिए उनके मन में एक वेदना एक सहानुभूति...कुछ तो रहेगा ही। वे अब अपने आप को केवल मेरा न कह कर सब का कहलें किन्तु आने वाली सहस्राब्दियां भी जन-जन के हृदय से मुझे उनसे अलग न कर सकेंगी। तो फिर कहो सुनन्दा मुझसा प्रसन्न आज कौन होगा ? उनके मान में ही मेरा मान है सखि। उन पर फूल बरसेंगे तो क्या उस सम्मान के परिमल से मेरा हृदय न महकेगा। किन्तु तो भी सुनन्दा मैं जाऊँगी नहीं।

[महाराज शुद्धोदन का प्रवेश; मुख मंडल पर सुख, शान्ति और कभी न मुरझाने वाली प्रसन्नता की एक छाया।]

महाराज यशोधरा बेटी।

यशोधरा महाराज।

महाराज तुम यहीं बैठी हो अभी तक ! जानती नहीं बुद्ध तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जिनकी चरण रज के लिए मानवता आतुर हो, वे तुम्हारे द्वार पर चल कर आएँ और तुम······

यशोधरा मैंने उन्हें भेजा ही कब था महाराज जो उनकी अगवानी के लिए जाऊँ। वे आज मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। (शून्य दृष्टि में एक गहरी मुस्कान) कई वर्षों तक रात दिन निर्निमेष उनकी प्रतीक्षा की है

मैंने; किन्तु वह कौन जानता है ? विश्व तो केवल इतना जानेगा कि उन्होंने घोर तपस्या की, ज्ञान प्राप्त किया। उस तपस्या में किसी और का भी सहयोग है—यह जानने का उन्हें अवकाश कहाँ ?

महाराज ऐसी बात नहीं बेटी। उनका पहला ही प्रश्न तेरे सम्बंध में था। वे तो अब जगती को अपनी पीयूष-मयी वाणी से सत्य का मार्ग जतलाते घूम रहे हैं। आज यहाँ, कल वहाँ। यदि अब भी वे तुम्हें बिना मिले चले गये तो...

यशोधरा नहीं महाराज, अब मैं सोई नहीं, जाग रही हूँ।

महाराज यशोधरा, विचारों के किस जाल का निर्माण कर लिया है तुमने ? निस्संदेह तुम्हारे हृदय की टीस का अनुमान कोई नहीं लगा सकता। किन्तु अमा के कालेक्षणों में ही तो पूनम की द्युति-रेख छिपी रहती है। रजनी की तारों भरी चादर में से उषा के चरणों का नर्तन ही तो सुनाई देता है।

यशोधरा ठीक है महाराज।

महाराज उठो बेटी। तुम एक बार उन्हें देखो तो सही। तुमने तो उन्हें केवल राजकुमार के वेश में ही देखा है। तपस्वी के वेश में वे कितने अच्छे लगते हैं ? उनके दर्शन मात्र से क्लिष्ट जगती का कल्याण हो रहा है। सोच लो यशो। मैं जा रहा हूं।

(प्रस्थान)

सुनन्दा चली क्यों नहीं जाती सखि।

यशोधरा सुनन्दा, क्या तुम समझती हो कि मैं उनके दर्शन से भी वंचित रहना चाहती हूं। और तुम्हें विश्वास है कि वे वहीं से चले जाएंगे। मुझे देखने तक न आएंगे ? वे तो अन्तर्यामी हैं। क्या वे मेरे हृदय की धड़कनें नहीं सुन रहे। क्या वे नहीं जानते कि मेरा रोम रोम उनके चरणों में लिपटने के लिये आतुर है। अहिंसा के अवतार हैं

वे। मुझे इस अथाह सागर में डूबती उतराती छोड़ कर वे जा सकेंगे क्या? इसी एक क्षण के लिये तो अब तक जी सकी हूं सुनन्दा।

(हांफते हुए राहुल का प्रवेश)

राहुल — मां, तू नहीं आई। पिताजी को ही झुकना पड़ा आखिर। वे इधर ही आरहे हैं।

यशोधरा — (साड़ी का छोर सिर पर रखते हुए) इधर आरहे हैं?

राहुल — हां मां, इधर आरहे हैं। बड़े अच्छे लगते हैं मां। उनके मुख-मंडल से दृष्टि फेरने को जी ही नहीं चाहता। मैं तो वहीं उनके पास बैठा रहा। वे मुझे बड़े दुलार से बुलाते हैं। जब दादा ने कहा—'तू न आएगी'—तो बोले, 'अच्छा'। और उठ कर स्वयं चल दिये इस ओर। वह देखो। वह देखो मां। वह आ रहे हैं।

[यशोधरा के मन का तूफान आंखों की राह निकल पड़ता है। बुद्ध का प्रवेश। पीत वस्त्र पहने हैं। साथ प्रजावती और महाराज शुद्धोदन हैं। यशोधरा बुद्ध की चरण-रज लेती है।]

बुद्ध — मैं स्वयं चल कर आ गया हूँ देवी। (रोते देख कर) दुर्बलता के प्रतीक हैं ये आँसू कल्याणि।

यशोधरा — (अश्रु पोंछ कर) ये प्रसन्नता के प्रतीक हैं प्रभु। सघन हो कर बह निकले हैं। आज निरंतर बहते तो मैं प्रभु के पथ को निर्निमेष कैसे देखा करती?

बुद्ध — देख रहा हूँ कल्याणि! इस अकथ साधना द्वारा तुम सोने से कुंदन बन गई हो। गौतम जिस साधना से बुद्ध हुआ उसकी प्रेरणा तो तुम्हीं हो देवी।

यशोधरा — जीवन की यही एक लालसा शेष थी कि आप आयेंगे और मेरी युग-युग की पीड़ा उल्लास के इस एक क्षण में सदा-सदा के लिए

डूब जायेंगी। आज वह भी पूर्ण हुई।

हुल (बुद्ध के समीप जाकर) मां कहती थी, ममता हेय हो सकती है कर्त्तव्य तो...

शोधरा (राहुल को चुपाते हुए) नहीं राहुल...

द्ध कर्त्तव्य ही तो निबाह रहा हूँ राहुल।

द्धोदन गौतम से बुद्ध बनने के लिए ही महानिष्क्रमण हुआ था। अब उस व्रत की अवधि समाप्त हो चुकी है। स्वजन वर्ग की इच्छा से तुम फिर से सांसारिक धर्म ग्रहण करो।

द्ध आपके हृदय में मेरे लिए जो असीम स्नेह है उसे आप मानवता के लिये वार दें। इस प्रकार आप इस सिद्धार्थ की अपेक्षा एक बहुत बड़े सिद्धार्थ को पा लेंगे। विश्व कल्याण का जो पथ मैंने चुना है, उसके लिए तो जाने मुझे कहां-कहां घूमना है। मुझे सांसारिक धर्म की दीक्षा देकर आप लोक-कल्याण के मार्ग में बाधक होंगे क्या?

द्धोधन तो एक लालसा और है पुत्र। तुम कुछ दिन राज प्रासाद में ही रहो।

द्ध इन लालसाओं पर विजय पाना भी मेरे धर्म का लक्ष्य है। राज्य-प्रासाद में रहना संघ द्वारा विहित भी नहीं। (यशोधरा से) देवी मैं भिक्षा-पात्र लेकर आया हूँ।

शोधरा (कण्ठावरोध) जब से सुना है कि आप भिक्षा-पात्र लेकर आ रहे हैं तभी से सोच रही हूँ कि क्या दूंगी। मेरे पास तो अब अतीत की धुंधली स्मृतियां ही रह गई हैं। वर्त्तमान के इस एक क्षण पर उन सब का उत्सर्ग कर दूँ क्या? जब आज एक युग के पश्चात् आपने मेरे सामने दामन ही पसार दिया...किन्तु उन स्मृतियों का मूल्य।

बुद्ध उनका मूल्यांकन बुद्ध पर छोड़ दो।

शोधरा (जैसे निद्रा से अचानक जगी हो) मूल्यांकन...बुद्ध पर छोड़ दूं...तो क्या...तो क्या आप...

बुद्ध हां देवी। उनका मूल्यांकन बुद्ध पर छोड़ दो। और उन स्मृतियों के अतिरिक्त भी तुम्हारे पास कुछ है देवी।

(यशोधरा की आखों में प्रश्न-चिह्न है। वह बुद्ध की ओर देखती है जाने जानना चाहती हो वह वस्तु क्या है। आंखें बड़ी हो गई हैं। ओठ खुले रह गये हैं)

यशोधरा मैं समझी नहीं प्रभु।

बुद्ध राहुल।

शुद्धोधन क्या कहा ?

(यशोधरा एक मानसिक पीड़ा का अनुभव करती हुई आंखें बन्द कर लेती है। निचला ओठ दांतों में दबा लिया है। आंखों से टपटप आंसू बह निकले हैं। बुद्ध के चेहरे पर एक मुस्कान है।)

बुद्ध बोलो देवी ! भिक्षा दोगी क्या ?

यशोधरा **(आंखें खोलकर और गरदन उठाकर)** तज देने का अधिकार आपको था तो अपनाने का अधिकार कौन छीनेगा। **(राहुल के सिर पर हाथ रखकर)** जाओ राहुल, जीवन की विषम वेला में तुमने मेरे संतप्त मानस को सांत्वना दी है तो फिर मैं तुम्हें तुम्हारे पैतृक अधिकार से क्यों वंचित रखूँ ?

(महाराज शुद्धोदन दुःख का नाट्य करते हुए बाहर चले जाते हैं)

बुद्ध **(राहुल से)** राहुल प्रव्रज्या ग्रहण करो—बोलो...

संघं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि
बुद्धं शरणं गच्छामि

(राहुल तीनों वाक्य दुहरा कर मां की चरण रज लेकर बुद्ध के साथ चल पड़ता है। यशोधरा ठगी सी रह जाती है। आंखों में आंसू हैं और है एक प्रश्न चिह्न। नेपथ्य से करुणाभरा वाद्य संगीत चलता है। धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।)

यंग

तीखे व्यंग, कटाक्ष और वाक्वैदग्ध्य द्वारा व्यक्तिगत तथा समष्टिगत कुरीतियों, प्रवृत्तियों और मूर्खताओं का उपहास इसका लक्ष्य है। प्रहसन के विपरीत यह विचारोत्तेजक और सोद्देश्य होता है। प्रस्तुत एकांकी में धनलोलुप व्यक्तियों पर तीखा व्यंग है। इसके अतिरिक्त भुवनेश्वर का 'स्ट्राइक', अश्क का 'अधिकार का रक्षक' तथा विष्णु का 'कांग्रेसमैन बनो' भी विशुद्ध व्यंग के अच्छे उदाहरण हैं।

दस हज़ार

पात्र

बिसाखाराम	सीमा-प्रांत का एक सेठ
सुन्दरलाल	बिसाखाराम का लड़का
राजो	बिसाखाराम की लड़की
राजो की माँ	सेठ की पत्नि
मुनीम	

एक ही दृश्य में—

समय—शाम के पांच बजे

[सीमा-प्रांत के एक नगर में एक मकान। मकान में एक बड़ा-सा कमरा, जिसमें दो दरवाज़े हैं। एक सीढ़ी के पास और दूसरा मकान के भीतरी भाग में जाता है। गली की तरफ़ दो खिड़कियां हैं। भीतर कमरे में एक बड़ी खाट है, जिसपर मैला-सा बिस्तर बिछा है। पूर्व की तरफ़ कोने में एक चौकी है, उसके सामने आले में ठाकुर जी का एक सिंहासन है। उसमें कुछ पीतल की मूर्तियां हैं। उनपर गेंदे के फूल की माला चढ़ी है। आले की कील में एक रुद्राक्ष की माला है। हाथ की लिखी हुई छोटी-छोटी दो किताबें हैं। कमरे में कुछ तस्वीरें हैं—एक रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की, जिसमें राम के राज्याभिषेक का दृश्य है; हनुमान् माला तोड़ रहे हैं। दूसरी तस्वीर एक काली की है। कमरे में एक मोढ़ा रखा है और टूटी हुई कुर्सी, जिसका बेंत टूटा हुआ है। एक छोटी-सी मेज़ एक कोने में रखी है। उस पर एक लोटा और उसके ऊपर एक गिलास रखा है। दो खूँटियां गढ़ी हुई हैं, उनमें एक पर एक पगड़ी और दूसरी पर एक दुपट्टा और मैला-सा कोट है। खाट

पर लाला बिसाखाराम बेचैनी से लेटा हुआ है। उसकी आंखों में बेचैनी है। चेहरा पिचका हुआ, रंग गोरा, बाल बिखरे हुए। मालूम होता है बड़ी चिंता में है। हाथ में चिट्ठी है, जिसे बार-बार उठाकर पढ़ता है और फिर सिरहाने रख देता है। फिर उठा लेता है, पढ़ता है, और फिर रख देता है। उठकर बैठ जाता है और छत की ओर ताकता है और धम्म से फिर खाट पर लेट जाता है।]

बिसाखाराम हाय, क्या जाना था, यह दिन भी देखना पड़ेगा! हे राम जी! उबारो महाराज! बड़ी बिथा आ पड़ी है। कोई उपाय सूझे नहीं है। (**आंख मीचकर ठाकुरजी को हाथ जोड़ने लगता है, फिर आंखें खोलकर पत्र हाथ में लेकर पढ़ने लगता है**) क्या करूँ? राजो, राजो री!

(**भीतर के दरवाज़े से चौदह साल की एक लड़की दौड़ती हुई आती है।**)

राजो हाँ चाचाजी! क्या कहो हो!

बिसाखाराम अरी, क्या अभी मुनीमजी नहीं आये? मरा जाऊँ हूँ! बड़ी मुसीबत है।

राजो भाई कब आवेंगे भला! (**एकदम पास आकर**) बुला लो न भाई को। कुछ रुपयों की ही तो बात है। हाय, (**आंखों में आंसू भरकर**) हे भगवान्, बड़े नामुराद हैं ये लोग! चाच्चा जी, भेज दो रुपया, क्या देखो हो?

बिसाखाराम (**बैठकर**) क्या देखूँ हूँ बेटा! अपनी किस्मत को रोऊँ हूँ। रुपया भी कहां धरा है? अभी अनाज भी तो खरीदना है। कल

मुहम्मद बकस आने रुपए का सूद देकर दो हजार माँगने आया था, उसको भी तो देना ही है। दस हजार के सरकारी बौंड खरीदने हैं, ऐसा मौका कब मिलेगा? इतना सूद क्या छोड़ा जा सके है बेटा? ओः! दस हजार देने पड़ेंगे! **(एकदम खाट पर धड़ाम से लेट जाता है)**

राजो (**दौड़कर**) चाच्चाजी, क्या हुआ तुम्हें? भाभी, ओ भाभी! देख तो चाच्चा को क्या हुआ है?

(राजो की मां 'अरी आई' कहती हुई आती है)

राजो की मां कह तो दिया, परेसान होने की क्या जरूरत है? दे दो दस हजार। रुपए तो फिर भी मिलते रहेंगे। लड़का तो फिर...हा भगवान्, क्या कह रही हूँ! हे रामजी! (**हाथ जोड़कर आले में रखे सिंहासन की तरफ देखने लगती है**) यों ही करे हैं! दया करो भगवान्!

बिसाखाराम मुनीमजी नहीं आये? (**आंखें बंद कर लेता है**)

राजो आते ही होंगे। तुम्हारा कैसा जी है चाच्चा?

राजो की माँ कहूँ तो हूँ, फिकर क्यों करो हो? हे ईश्वर, मेरे लड़के को लौटा दो। मेरा सब कुछ ले लो। मेरे प्यारे बच्चे को मुझे दे दो भगवान्! (**रोने लगती है**)

राजो (**मां के गले से लिपटकर**) रोवे क्यों है भाभी? चाच्चा से कह के भाई को बुला ले न!

राजो की मां (**आँसू पोंछती हुई**) कैसे बुलाऊँ बेटी! तेरे चाच्चा को तो

रुपये की पड़ी है। ईश्वर ने एक ही लड़का दिया...हा भगवान्!

बिसाखाराम (आंखें खोलकर) राजो, मुनीमजी नहीं आए बेटी !

राजो अभी तो नहीं आये।

बिसाखाराम न मालूम मुनीम ने खाँड का सौदा किया या नहीं ? इस वक्त तो खाँड खरीदनी जरूरी है। फिर महँगी हो जावेगी। कैसी मुसीबत है। न जाने इब्राहीम से रुपये का तकाजा किया या नहीं? आज चार साल होने को आए; अभी तक सूद भी नहीं दिया। मुकदमा लड़ना पड़ेगा। तब जाकर वह बेईमान रुपया देगा। **(पत्र हाथ में लेकर)** पर इसको क्या करूँ ?

('राजो; राजो' नाम लेकर मुनीम आवाज़ लगाता हुआ एक ओर से आता है।)

बिसाखाराम लो, मुनीमजी, आ गए। **(एक दम उठ कर बैठ जाता है)** आओ मुनीमजी, आज बड़ी देर लगाई !

(राजो और उसकी माँ दूसरे दरवाज़े से घर में चली जाती हैं।)

मुनीम जै रामजी की सेठ जी ! देर हो गई, दिन-भर का हिसाब-किताब करना था। तेरह आने के हिसाब से खाँड के सौ बोरे खरीद लिये हैं। मुहम्मद बकस का आदमी आया था। मैंने कह दिया, सेठजी के आने पर फैसला होगा। सुना है, इब्राहीम फरार हो गया है। रोकड़ मिलाते इतनी देर हो गई है। हाँ पठानों की कोई चिट्ठी आई क्या ?

बिसाखाराम खाँड तो बारह आने चार पाई थी न, फिर तेरह आने क्यों खरीदी ? इब्राहीम भाग गया ? हाँ तो बड़ी बुरी खबर है। मुनीमजी, चार हजार नक़द हैं कैसे छोड़े जा सके हैं ? चौधरी से नहीं कहलवाया ? वह तो जामिन है न ? सरकारी बौंड की कोई चिट्ठी आई ? रुपये तैयार रखना। बौंड तो खरीदने ही होंगे।

मुनीम पठानों की तरफ़ से कोई चिट्ठी आई सेठजी।

बिसाखाराम रोकड़ में कितना बाकी है ? चौधरी के पास अभी आदमी भेजो और तकाजा करो। (**खाट पर लेट कर**) सब तरफ़ मुसीबत है। रुपया लेकर देने का कोई नाम नहीं लेता। (**आँखें बन्द करके लेट जाता है**) हा भगवान् ! हे रामजी ! कैसा बुरा समै है ! (**उठकर**) मैं जाऊँ, अब तबीअत देखूँ या रुपया ? (**बैठ जाता है**)

मुनीम नहीं सेठ जी ? बीमार हो जाना ठीक नहीं है। पठानों ने कुछ नहीं लिखा सेठजी ? सुन्दरलाल का खयाल करना ही चाहिए। न मालूम बिचारे को कैसी तकलीफ़ दे रहे होंगे। (**सेठ की ओर देखता है।**)

बिसाखाराम लो यह पढ़ो कैसा दुष्ट है लड़का ! जरा भी लड़ाई नहीं करी। डोली में नई बहू की तरह उनके साथ चला गया मेरी छाती पै मूँग दलने ! कहाँ से लाऊँ दस हजार ! दस हजार ! (**चिट्ठी मुनीम के हाथ में देकर**) लो पढ़ो, सब बरबाद कर दिया। भला बाहर गया ही क्यों ! (**लेट जाता है**)

मुनीम सेठजी, सुन्दरलाल का कोई अपराध नहीं है। उगराही करने के

लिए आपने ही भेजा था।

(पत्र हाथ में लेकर पढ़ता है।)

बिसाखाराम (लेटकर) बरबाद हो गया मैं तो मुनीमजी ! हाँ, जरा जोर से पढ़ो।

मुनीम (चौंककर) हैं ! यह तो सुन्दरलाल की ही लिखावट है ! लिखता है—'पिता जी, अगर मेरी जिंदगी चाहते हो तो किसी आदमी के हाथ काबुली फाटक के बाहर आज ठीक शाम के आठ बजे दस हजार रुपया पहुंचा दो। पुलिस को या और कोई सहायक लेकर आये तो खान कहता है, 'लड़के को मरा ही समझो।' इन लोगों ने मुझे बड़ी तकलीफ़ दी है। शायद नरक की कोई भी यातना इससे अधिक नहीं हो सकती। मुझे विश्वास है, आप मेरी रक्षा करेंगे।

आपका पुत्र,

सुन्दरलाल।

नीचे खान ने खुद पश्तो में लिखा है—

'अब तुमको इत्तला देता है, तुम आज बुधवार को शाम के आठ बजे दस हज़ार रुपया काबुली फाटक के बाहर पहुँचा दे, नईं तो तुम्हारा लड़का को मार डालेगा।

अमीरअली खाँ

[मुनीम पत्र रखकर बिसाखाराम की ओर देखने लगता है।]

मुनीम सेठजी, दस हज़ार की क्या बात है। आज ही तो बुधवार है। अगर कहें तो मुहम्मद बक्स को न देकर दस हज़ार का इन्तज़ाम कर लूँ। रुपया तो है ही।

बिसाखाराम (उठकर) आने रुपये का सूद है मुनीम जी (डटकर) अपने घर से निकालो मालूम हो। गाढ़े पसीने की कमाई है। दस हज़ार यों ही आ जायँ हैं। हे भगवान् ! कंगाल कर दिया।

[राजो और उसकी माँ एक दम कमरे में आ जाती हैं।]

राजो की माँ यों ही जाँयगे, सुना तुमने मुनीमजी ? इनकी अकल पर तो पत्थर पड़ गए हैं। कुछ नहीं सोचते। बस, रुपया, रुपया, मेरा लड़का ला दो मुनीमजी ! हाय मेरा सुन्दर ! हाय मेरा बच्चा रे !

[घूँघट किये ज़मीन पर बैठ जाती है। राजो दौड़कर पिता से लिपट जाती है और निहोरे के ढंग में उसे देखने लगती है।]

बिसाखाराम भला मुनीमजी ! मैं क्या कहूँ हूं कि सुन्दर न आवे ? मैं तो खुद चाहूँ हूँ कि लड़का किसी तरह आ जावे। मैं क्या सुन्दर का बाप नहीं हूं ? तुम्हीं बताओ। लड़के के बिना तो घर सूना-सूना सा लगे है। पर, दस हजार ?

मुनीम (सिर हला) हाँ, सो तो है ही। यह तो करना ही पड़ेगा।

राजो की माँ आज चार दिन से मैं इनका रूप देख रही हूं। कहूं हूँ रुपए के पीछे लड़के को हाथ से न खोलो, रुपया तो हाथ का मैल है दस हजार क्या बड़ी बात है। पर इन्हें तो न जाने क्या हो गया है। खाँड और सूद से इनका विचार छूटे तब न ! मुनीमजी मैं तुम्हारे पैर पड़ूँ मेरे सुन्दर को ला दो।

मुनीम माताजी, घबराओ मत। सुन्दर को घर पर ही समझो !

राजो की माँ घर पर कैसे समझूँ, मुनीमजी, घबराऊँ क्यों नहीं ? इनकी (पति की ओर इशारा करके) हालत देख कर तो जी में ऐसा हो रहा है कि मैं लड़का खो बैठूँगी। कहते हैं, जो होना था, सो हो गया। और लड़का...हाय ! न मालूम इनसे यह कैसे ऐसा कहा गया ! हे भगवन् !

राजो मुनीमजी, मेरे भाई को जल्दी बुला दो। देखो, कई रातों से माँ सोई नहीं है ! सारी-सारी रात रोती रही है, आँखें सूज गई हैं। मेरे भाई को जल्दी लाओ, मुनीमजी !

(रोने लगती है)

राजो की माँ मैं कहूँ हूँ, मेरा गहना लेकर बेच दो और मेरे लड़के को बचा लो।

मुनीम घबराने की क्या बात है माताजी, सेठजी को भी तो आपसे कम फिकर नहीं है ?

विसाखाराम हाँ सो तो है ही। मैं भी कब सोया हूँ रात में। दिन-रात चिन्ता लगी रहती है। सुन्दर मेरी आँखों के सामने झूमता रहे है। उसके बचपन की बातें याद आया करे हैं। इधर इब्राहीम रुपया देने में ही नहीं आवे। क्या तुमने उसके सूद का हिसाब लगाया मुनीमजी, कितना बने है उसके ऊपर ? खाँड कहाँ रखवाई है गोदाम में न ? देखो तालियाँ अपने पास ही रखना। न हो तो मुझे दे जाओ।

मुनीम सेठजी, सुन्दरलाल के लिए क्या हुक्म है ? रुपये का इंतजाम करूँ ? बहुत थोड़ा वक्त है। (सेठ की ओर देखता है) पन्द्रह

हज़ार तिजोरी में अभी रख कर आया हूँ।

बिसाखाराम दस हज़ार ! न कम न थोड़ा ! अरे और कोई इन्तजाम नहीं हो सके है मुनीमजी ? पुलिस को खबर क्यों न कर दो।

मुनीम पुलिस भी क्या कर लेगी सेठ जी, पुलिस भी तो डरे है। और उसे क्या मालूम नहीं है, पर वह करे तब तो ! सेठजी मैं तो आपको सलाह न दूँगा कि आप और इंतजाम करें। नहीं तो आप लड़के से हाथ धो बैठेंगे। न करे ईश्वर।

राजो की माँ तुम किस संसै में पड़े हो मुनीमजी ? लो मेरा गहना ले जाओ। (उतार कर सामने रख देती है) लो, मेरे लड़के को ला दो। चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

बिसाखाराम क्यों सब मेरे प्रान खाये जाओ हो ? गहना भी कौन घर का नहीं है ?

मुनीम सेठजी ! देर हो रही है हुक्म दो।

राजो की माँ कह तो रही हूं, यह ले जाओ। पठानों को दे देना।

बिसाखाराम क्या करूँ फिर ? मुनीमजी ! अलीबकस अपने गहने छुड़ा ले गया क्या ?

मुनीम देर हो रही है सेठजी ! काबुली फाटक तक पहुँचना है, क्या हुक्म है ?

बिसाखाराम (दस हज़ार का ख्याल आते ही फिर बेसुध-सा होकर लेट जाता है।)

मनीम क्या आज्ञा है सेठजी ? इसलिए जल्दी कर रहा हूँ कि दुकान से कुछ आदमी साथ ले लूँगा।

राजो की माँ अरे बोल तो दो ! न बोलो ! मुनीम जी (अकड़ कर) ले जाओ रुपया ! मैं क्या घर की, दुकान की कोई भी नहीं हूं ? जाओ देर न करो। हे भगवान् !

मुनीम जो हुक्म। (चला जाता है।)

राजो (माँ से) अब भाई आ जायगा माँ ?

माँ हाँ बेटी, लेने गये हैं मुनीम जी। भगवान् का नाम ले, सुन्दर राजी-खुशी घर लौटे।

बिसाखाराम (एक दम चेतन-सा होकर) मुनीमजी गये ?

राजो हाँ गये, चाच्चा जी ?

बिसाखाराम घर बरबाद कर डाला। क्या से क्या हो गया ? लड़का कपूत निकला। हाय, कैसे मैंने पैसा कमाया। दस हजार ? हाय राम रे ! (फिर लेट जाता है) अरी राजो की माँ, मैं मरा !

राजो की माँ कहूँ हूँ कौन रकम है। घर बच्चा आ जाय तो और हो जायँगे रुपये। परमात्मा ने सब कुछ तो...हे भगवान् दया करो। तुम इतनी चिंता क्यों करो हो ?

बिसाखाराभ चिंता न करूँ (बैठ कर) खून की कमाई है, खून की ! आज चालीस साल से लगातार दिन-रात एक करके रुपया कमाया है। (लेट जाता है)

राजो की माँ कमाया है तो फायदा ? न तीरथ, न जप-तप, न बर्त! कभी हरिद्वार भी न ले गये। मैं तो तुम्हारा पैसा जानती ही नहीं। चार कोठियाँ हैं और हम इसी गली में पड़े सड़ रहे हैं। आज तीन चार लाख रुपये के मालिक हो। एक पैसा कभी दान नहीं किया। ऐसा रुपया किस काम का ?

बिसाखाराम (उठ कर) आग लगा दे घर में ! मुझे क्या ? मुनीम ने आज की बिक्री का कोई हिसाब ही नहीं दिया। बेईमान हो गया है। हे रामजी, (लेट जाता है) दस हज़ार रुपया इस नालायक के... मुनीम कहाँ गया है राजो ?

राजो की माँ और रुपया होता ही किस लिए है ? इसमें सुन्दर का क्या अपराध है भला ?

बिसाखाराम मुनीम कहाँ गया ? शायद उगराही करने गया होगा। हे रामजी, दया करो ! (लेट जाता है।)

[सुन्दरलाल और मुनीम का प्रवेश राजो की माँ सुन्दरलाल को देख कर फूट-फूट रोने लगती है। राजो भाई से लिपट जाती है। लड़का दौड़ कर पहले बिसाखाराम, फिर अपनी माँ के पैर छूता है।]

बिसाखाराम (पुत्र को देख कर) आ गया रे ! बड़ी खुशी हुई।

राजो की माँ आज बेटे को देख कर छाती ठंडी हुई (उससे लिपट जाती है) मेरी आँखों के तारे !

राजो मेरे भैया ! (उसके गले से लिपट जाती है।)

राजो की माँ कैसा दुबला हो गया इतने ही दिनों में !

सुन्दरलाल हाँ माँ ! भगवान् इन राक्षसों के पंजे में न डाले । देख, मार-मार कर तमाम देह सुजा दी है । (देह दिखा कर) हड्डी-हड्डी दुख रही है ।

बिसाखाराम बड़ा अच्छा हुआ बेटा ! कैसे आए ? क्या वैसे ही उन्होंने छोड़ दिया ? मुनीमजी ! आज उगराही में क्या मिला ? (मुनीमजी की ओर देख कर) दस हजार रुपये दिए थे न ?

मुनीम (घबराकर) हाँ, सेठानी जी ने हुक्म दिया था ।

बिसाखाराम क्या पूरे दस हज़ार ?

[एक दम धड़ाम से तकिये पर गिर पड़ता है । सुन्दरलाल मुनीम, राजो बिसाखाराम की ओर देखते हैं ।]

राजो की माँ (सुन्दरलाल को थपथपाती हुई) इन्हें नींद आ गई है बेटा, आओ चलें ।

(पर्दा गिरता है ।)

ध्वनि नाट्य

मूलतः वाणी की कला है। इसका आधार वाचिक अभिनय है। दृश्य उपकरणों और प्रत्यक्षता का इसमें सर्वथा अभाव है, कथनोपकथन इसका सब से मुख्य अंग है। कान इसको देखते हैं। एक ग्रामीण ने इसे 'अन्धों का सिनेमा' ठीक ही कहा था। इसका एकांकी होना अनिवार्य नहीं।

प्रस्तुत ध्वनिनाट्य मनोवैज्ञानिक नाटक का अच्छा उदाहरण है।

बीमार

पात्र

पं० रामरतन	भूतपूर्व थानेदार
नीलरतन	उनका पुत्र
गोमती	उनकी पत्नी
डाक्टर	डाक्टर होने के साथ वह पुराना विद्रोही भी है
	एक वृद्ध, एक बालक, दो युवक
	जनता, सिपाही आदि आदि

(आधी रात का सन्नाटा, कभी कभी कुत्ते भूंकने और बच्चों के रोने का स्वर, कभी कहीं कोई खटका, देर तक गूंज, किसी के आने का स्वर, चाल में अस्त व्यस्त तेजी, बूटों की अस्त-व्यस्त खड़खड़, स्वर समाप्त होता है और उतावली पुकार उठती है।

नीलरतन डाक्टर साहब, डाक्टर साहब ! (गूंज) डाक्टर साहब, डाक्टर साहब !

(गूंज, किवाड़ों पर तेज थपथपाहट)

नीलरतन डाक्टर साहब, डाक्टर साहब, अजी ओ डाक्टर साहब ।

एक स्वर हूं ऊं ऊं ऊं.........

(फिर थपथपाहट)

नीलरतन डाक्टर साहब, डाक्टर साहब, अजी डाक्टर साहब उठिये। (करुण स्वर में) डाक्टर साहब ।

एक स्वर ओ ओफ...ओ...कौन है? रात को भी नहीं सोने देते ।

नीलरतन डाक्टर साहब मैं हूँ ।

डाक्टर तुम कौन हो ?

नीलरतन मैं नीलरतन हूं डाक्टर साहब। कृपा करके जल्दी आइए।

डाक्टर (एकदम) क्या चाहते हो ?

नीलरतन डाक्टर साहब, मेरे पिताजी बहुत बीमार हैं। हालत चिन्ताजनक है। आप कृपा करके उन्हें देखने चलें।

डाक्टर इस वक्त। दिन में क्यों नहीं आये ? आप लोगों की कितनी बुरी आदत है ! हालत बिगड़ जाती है तभी दौड़ते हैं।

नीलरतन जी, जी, उनकी हालत अचानक बिगड़ गई। डाक्टर साहब ! आप की बड़ी कृपा होगी।

डाक्टर अच्छा ठहरो मैं आता हूँ।

(फिर सन्नाटा, हल्की खटखट, नीलरतन की फिर पुकार)

नीलरतन **(करुण स्वर में)** डाक्टर साहब...

(फिर एकदम किवाड़ खुलते हैं)

डाक्टर घबराओ नहीं, घबराओ नहीं, मैं आगया हूं। बहुत दूर तो नहीं जाना है !

नीलरतन जी नहीं, बहुत दूर तो नहीं...जी इस समय सवारी नहीं मिली।

डाक्टर कोई चिन्ता नहीं। मैं ऐसे ही चलूंगा। हां, तो तुमने क्या कहा था ! तुम्हारे पिता बीमार हैं।

(चलते चलते बातें करते हैं)

नीलरतन जी हां।

डाक्टर हालत चिन्ताजनक है ?

नीलरतन जी हां।

डाक्टर रोग क्या है।

नीलरतन जी ज्वर है।

डाक्टर केवल ज्वर !

नीलरतन जी हां। देखने पर तो ज्वर मालूम होता है ! वैसे वे...

डाक्टर वैसे क्या ?

नीलरतन वैसे वे कभी-कभी प्रलाप करने लगते हैं !

डाक्टर प्रलाप करते हैं ?

नीलरतन जी हां, ऐसा प्रलाप करते हैं कि जान पड़ता है पागल हो गये हैं।

डाक्टर उनके प्रलाप करने का कोई विशेष समय है ?

नीलरतन वे प्रायः आधी रात के बाद ऐसा करते हैं। इसी कारण इस समय आया हूं।

डाक्टर हूं, कब से ऐसा होता है ?

नीलरतन लगभग एक वर्ष से।

डाक्टर एक वर्ष से !

नीलरतन जी बात यह है कि एक वर्ष पहले उन्हें बहुत तीव्र ज्वर आया था। उस समय उन्होंने पहली बार प्रलाप किया। इलाज करने पर तब तो वे ठीक हो गये थे, पर कुछ दिन बाद फिर उसी तरह ज्वर आया और वे प्रलाप करने लगे।

डाक्टर हूं ! पर अब कब से बराबर बीमार हैं ?

नीलरतन जी दो महीने से ज्वर चढ़ा सो उतरा नहीं। प्रलाप भी बढ़ता जा रहा है।

(क्षणिक सन्नाटा, पदचाप, सहसा किसी बच्चे के रोने का स्वर)

डाक्टर **(धीरे धीरे जैसे अपने आप से)** दो माह से ज्वर चढ़कर नहीं उतरा, प्रलाप भी बढ़ता जा रहा है। **(सहसा)** उनकी छाती में दर्द होता है ?

नीलरतन नहीं।

डाक्टर पसली में ?

नीलरतन जी नहीं।

डाक्टर मूर्छा आती है ?

नीलरतन जी नहीं।

डाक्टर उठ कर भागते हैं ?

नीलरतन जी नहीं।

डाक्टर मारते हैं।

नीलरतन जी नहीं।

डाक्टर तुम्हें पहचानते हैं ?

नीलरतन जी नहीं। जी नहीं...पहचानते हैं।

डाक्टर अद्‌भुत रोग है! न काटते हैं, न दौड़ते हैं, न दर्द है, न मूर्छा, फिर...

नीलरतन (एकदम) जी डाक्टर साहब, वे रोते हैं! प्रलाप से पहले और बाद में वे बड़े करुण स्वर में रोते हैं।

डाक्टर केवल रोते हैं ?

नीलरतन जी कभी-कभी हंसते भी हैं।

डाक्टर रोते हैं, हंसते हैं, प्रलाप करते हैं। तो जान पड़ता है वे पागल हो गये हैं। पर अभी तो तुमने कहा था कि वे सबको पहचानते हैं ?

नीलरतन जी हां। (एकदम) इधर डाक्टर साहब इधर आइये।

डाक्टर तुम इधर रहते हो ?

नीलरतन जी हां।

डाक्टर तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

नीलरतन जी पंडित रामरतन।

डाक्टर पंडित रामरतन!

नीलरतन जी हां, वे शाहाबाद के थानेदार थे।

डाक्टर (सहसा चकित) शाहाबाद के थानेदार थे, पंडित रामरतन शाहाबाद के थानेदार थे...पंडित रामरतन !

नीलरतन जी घर यहां है। इधर से आइये...जी इधर से...

(सहसा किवाड़ खुलने और फिर एक नारी का घबराया स्वर)

गोमती नीलरतन।

नीलरतन हां माँ !

गोमती डाक्टर आये ?

नीलरतन हां मां, आये हैं। (मुड़कर) आइये डाक्टर साहब ! मेरी मां हैं।

गोमती नमस्कार डाक्टर साहब !

डाक्टर नमस्कार, रोगी किधर है ?

गोमती वे अन्दर के कमरे में हैं, पर डाक्टर साहब आप कृपाकर दो मिनट यहां ठहरें। मुझे आपसे कुछ कहना है।

डाक्टर जी कहिये।

गोमती नीलरतन ने आपको उनकी बीमारी के सम्बन्ध में तो सब कुछ बता दिया होगा ?

डाक्टर जी हाँ, सब कुछ तो नहीं, पर बहुत कुछ बता दिया है। और जो कुछ बताया है वह इतना अद्भुत है कि सहज ही मेरा मन उसपर विश्वास नहीं कर पा रहा है।

गोमती डाक्टर साहब, आपका मन विश्वास कर पायेगा या नहीं, यह मैं नहीं जानती पर जो कुछ नीलरतन ने कहा होगा वह अद्भुत होकर भी सत्य है।

डाक्टर (हल्की हँसी) सत्य स्वयं अद्भुत है और जहाँ तक मैं समझ सका हूँ आपको पति के रोग का सम्बन्ध किसी सत्य घटना से है।

गोमती डाक्टर साहब, आपने ठीक समझा है।

डाक्टर डाक्टर सदा ठीक समझते हैं। पर मैं उस घटना का पूरा हाल जानना चाहता हूँ।

गोमती वही, वही तो आपको बताना चाहती हूं। (**गम्भीर स्वर**) वे जीवन भर पुलिस में काम करते रहे हैं। पुलिस का काम कैसा होता है यह आपको बताना नहीं होगा। अपना कर्तव्य पूरा करने के लिये उन्हें वे काम करने पड़ते हैं जिन्हें साधारण अवस्था में वे स्वयं घृणित और निंदनीय मानते हैं।

डाक्टर जो एक बार किसी काम को घृणित और निंदनीय मान लेता है और फिर भी किसी अवस्था में उसे करता है वह कायर होता है।

गोमती डाक्टर!

डाक्टर क्षमा करिये, मैंने आपको टोक दिया। मैं स्वयं कायर हो चला था। आगे कहिये...।

(उसी समय अन्दर से चीख का स्वर उठता है, गोमती शीघ्रता से जाती है।

गोमती डाक्टर साहब शीघ्रता से आइये। प्रलाप शुरू होने वाला है। मेरे पीछे आइये।

डाक्टर घबराये नहीं, मैं आ रहा हूं। मैं अभी देखता हूं।

(चीख और रुदन पास आता है)

गोमती देखिये डाक्टर साहब, यह अवस्था है।

डाक्टर देख रहा हूँ, पर आप उन्हें छोड़ दीजिए। हाँ, हाँ बिलकुल छोड़ दीजिए।

गोमती डाक्टर साहब, छोड़ने पर ये...।

डाक्टर छोड़ने पर शायद बेचैनी बढ़ जायगी, कोई चिन्ता नहीं, रोग का

पता लगाने के लिये यह अति आवश्यक है कि रोगी को पूर्ण स्वतन्त्र छोड़ दिया जावे।

(चीख; जैसे कोई डरा हो)

गोमती डाक्टर साहब, इन्हें संभालिये वे बिलकुल अशक्त हैं।

डाक्टर अशक्त ही नहीं, कंकाल भी हैं। वह तो मैं देख रहा हूं। पर आप डरिये नहीं। मेरे रहते इन्हें कुछ नहीं होगा। (रोगी से) शान्त हो जाइये, पंडित जी, शान्त हो जाइये। आप शायद डर रहे हैं।

(क्षणिक सन्नाटा, चीख हल्की पड़ती है)

रामरतन मैं...मैं...

डाक्टर आप डर रहे हैं। आपने अभी कोई भयंकर स्वप्न देखा है।

रामरतन स्वप्न...नहीं मैंने कोई स्वप्न नहीं देखा।

डाक्टर आप सो नहीं रहे थे ?

रामरतन नहीं।

डाक्टर ओ आप जाग रहे थे। फिर डर क्यों रहे थे ?

रामरतन क्यों डर रहा था ? क्योंकि वे मुझे मारना चाहते थे।

डाक्टर वे कौन...क्या यह ?

रामरतन नहीं, यह तो नीलरतन है मेरा बेटा।

डाक्टर तो ये।

रामरतन नहीं, नहीं ये नीलरतन की माँ है।

डाक्टर तो फिर मैं ?

रामरतन आप, नहीं आप भी नहीं...लेकिन आपकी सूरत...नहीं, नहीं... आप तो...आप तो शायद डाक्टर हैं।

डाक्टर हूं, मेरी सूरत...मेरी सूरत...(सम्भल कर) तो फिर कौन मारना

है, और तो यहाँ कोई नहीं है ?

रामरतन (एक दम चीख कर) वे आ गये, वे फिर आ गये। देखो उनके नेत्रों से अग्नि की ज्वालायें उठ रही हैं। उनके हाथों में मृत्यु का पाश है। उनकी गति में मेरा हृदय डूबता है। डाक्टर...डाक्टर मुझे (उनके कंठ से अट्टहास उठता है) डाक्टर, डाक्टर (स्वर भय से पूर्ण पर धीमा अति धीमा होता है) मुझे बचाइये, वे मेरा गला घोंटना चाहते हैं। वे मुझे मारना चाहते हैं ? देखो तो, देखो तो,...डाक्टर...(केवल फुसफुसाहट)

डाक्टर शान्त पंडित रामरतन, शान्त, मेरे रहते वे आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे।

रामरतन डाक्टर, डाक्टर साहब।

डाक्टर बस अब साहस करो। हाँ, यह तो बताओ कि आप उन्हें पहचानते हैं।

रामरतन हाँ...हाँ...मैं उन्हें पहचानता हूं विशेष कर उन चारों का।

डाक्टर उन चारों को, वे चारों कौन ?

रामरतन (एकदम तेज) नहीं, नहीं, डाक्टर वह देखो, यह भीड़ फिर उमड़ी, वे असंख्य नारियाँ, वे दुधमुँह बच्चे, वे लड़खड़ाते बूढ़े, वे गुस्से से कांपते हुए युवक, वे चिल्लाते हुए बालक, वे....वे सब विद्रोही, राज के दुश्मन, वे सब देश के दुश्मन, बागी, लफंगे...सब आज मुझे मारने को चढ़े आ रहे हैं...वे आ रहे हैं !

डाक्टर नहीं, नहीं यहाँ कोई नहीं आ रहा है। सब ओर शान्ति है, सब ओर रात्रि का साम्राज्य है ? किसमें साहस है कि जो उसकी शक्ति से लोहा ले।

रामरतन नहीं...नहीं, डाक्टर वे आ रहे हैं, मुझे मारेंगे, क्या आप उन्हें देख नहीं रहे ? क्या आप उनका शोर नहीं सुन रहे ? डाक्टर...

डक्टर...मेरे कान फटे जा रहे हैं...प्राण निकले जा रहे हैं। देखो धरती कैसे कांप रही है। आसमान में धूल भर गई है। चारों ओर अन्धेरा बढ़ रहा है। अन्धेरा बढ़ रहा है...और आप कुछ नहीं देखते, आप कुछ नहीं सुनते...नहीं, नहीं डाक्टर, सुनो, देखो वे आ रहे है, वे मुझे मारेंगे, अवश्य मारेंगे।

डाक्टर मारेंगे, पर आखिर क्यों मारेंगे? आखिर आपने उनका क्या बिगाड़ा है?

रामरतन मैंने उनका क्या बिगाड़ा है?...मैंने उनका क्या बिगाड़ा है! मैंने...मैंने उनके प्राण लिये थे, डाक्टर, मैंने उनके प्राण लिये थे। मैंने उनको जान से मारा था।

डाक्टर आपने उनके प्राण लिए थे? आपने उनको जान से मारा था?

रामरतन जी हां!

डाक्टर कब?

रामरतन कब? आप नहीं जानते...आपको कुछ पता नहीं।

डाक्टर नहीं।

रामरतन आप नहीं जानते। उफ़...ओह...आप नहीं जानते...आपको कुछ पता नहीं, उफ़ ओह...

(क्षणिक सन्नाटा। गहरी सांस)

गोमती डाक्टर साहब, कृपा कर आप अब उन्हें न बोलने दें। बहुत बोलने से...

डाक्टर बहुत बोलने से मन का बोझ उतर जाता है। आप चिन्ता न करें।

गोमती डाक्टर!

डाक्टर मैं ठीक कहता हूं; श्रीमती जी! आप विश्वास करें।

गोमती विश्वास ! आप यह क्या कहते हैं डाक्टर । मेरी लाज आपके हाथों में है । किसी तरह इनको अच्छा कर दीजिये, मुझसे इनका तड़पना नहीं देखा जाता ।

डाक्टर (गहरा सांस) मुझसे भी नहीं देखा जाता । पर श्रीमती जी, मनुष्य को कभी-कभी न चाह कर भी वह देखना पड़ता है जो वह देखना नहीं चाहता ।

रामरतन आप उन्हें नहीं जानते । मैं उन्हें बहुत अच्छी तरह जानता हूँ । मैं उन्हें असंख्य आदमियों के बीच में से खोज सकता हूँ । वह देखो वह सबसे आगे जो बूढ़ा है, वह कितना भयानक है, उसके बाल श्वेत रेशम की भाँति चमकते हैं, पर उसके नेत्रों में अग्नि दहकती है। उसकी झुर्रियों में रक्त बहता है, वह प्रलय की गति से दौड़ता है और...और...डाक्टर...डाक्टर मुझे...डर लगता है । वह मेरी ओर आ रहा है । वह आया, डाक्टर, मुझे बचाइये ! वह आया ।

डाटक्र कोई नहीं आया, पं० रामरतन । कोई नहीं, आप घबराइये नहीं। हां, बताइये दूसरा कौन है !

रामरतन दूसरा...दूसरा डाक्टर, वह साक्षात् काल का बेटा है । उसकी आयु कम है । वह अबोध है । छोटा-सा बालक है ।

डाक्टर (सहसा कांप कर) छोटा-सा बालक !

रामरतन हां...हां...वह छोटा सा बालक है । क्या तुम उसे नहीं देख रहे ! उसकी आंखों में कैसी सरलता है । कैसा भोलापन है। उसका साहस... डाक्टर ! वह साहस की मूर्ति है । भय स्वयं उससे भय खाता है। शंका उसकी ओर दृष्टि नहीं उठा सकती । डाक्टर...डाक्टर, मुझे बचाओ वह मुझे जीभ निकाल कर चिढ़ा रहा है । मगर उसकी जीभ

है या तलवार, डाक्टर...डाक्टर...मुझे बचाओ...मुझे बचाओ, उसकी जीभ से मुझे डर लगता है। उसका चेहरा बड़ा भयानक है। वह मुझे खा जाना चाहता है, डाक्टर...वह आगे बढ़ा...वह दौड़ा...मुझे बचाओ, डाक्टर, मुझे बचाओ...

डाक्टर (कांपकर) शान्त, थानेदार साहब शान्त...

रामरतन (एक दम चीख कर) कौन बोला...वह बालक...कहाँ है, किधर है? डाक्टर मुझे बचाओ, वह अभी मेरे पास आया था, वह अभी मेरे कान में बोला था? डाक्टर वह अभी मेरे कानों में बोला था।

डाक्टर (धीमे से) वह अभी बोला था, वह...(एकदम संभल कर) यहां कोई नहीं है थानेदार साहब। आप डरें नहीं। उस बालक की चिंता न करें और शेष दो व्यक्तियों के बारे में बतावें।

रामरतन वे...वे...दोनों युवक हैं। हां, हां वे ही, वे जो तीव्रता से चिल्ला रहे हैं। उनकी हँसी कैसी भयानक है? उनके नेत्र कैसे लाल हैं? वे बार-बार मुठ्ठियां भींचकर मुझे दिखा रहे हैं। वे चुल्लू में भर कर कुछ पी रहे हैं डाक्टर। डाक्टर...मैं जानता हूं वे मेरा रक्त पीना चाहते हैं, डाक्टर वे मेरा रक्त पीना चाहते हैं (तेज स्वर) वे मेरा रक्त पीना चाहते हैं...मेरा रक्त।

डाक्टर (धीमा स्वर) तुम्हारा रक्त पीना चाहते हैं। तुम्हारा रक्त पीकर कोई क्या करेगा? (एक दम शान्त) थानेदार साहब यहां कोई नहीं है। कोई तुम्हारा रक्त नहीं पियेगा।

रामरतन (एकदम चौंककर) डाक्टर, डाक्टर, तुम कहां हो, वे आ गये...वे फिर आ गये...मुझे बचाओ, डाक्टर मुझे बचाओ, डाक्टर मुझे उनसे बचाओ। उनकी आंखों से फिर ज्वाला उठ रही है; उनके हाथ

फिर मेरा गला घोंटने के लिए बढ़े आ रहे हैं। डाक्टर साहब... डाक्टर साहब, उनकी जीभ, उनकी जीभ...

डाक्टर थानेदार साहब, आप बहुत घबराते हैं। लीजिये आंखें बन्द कर लीजिये। मैं अपना हाथ उन पर रखे देता हूँ। हां, ऐसे, अब आपके पास कोई नहीं आसकेगा।

रामरतन डाक्टर...डाक्टर (**गहरी सांस**)

डाक्टर जी।

रामरतन डाक्टर तुम बहुत अच्छे हो, बहुत...(**क्षणिक सन्नाटा, गहरी सांस**)

गोमती डाक्टर साहब, अब इन्हें होश आने वाला है, आज ये रोये नहीं।

डाक्टर यही सोच रहा हूँ। जान पड़ता है आंसुओं की कहानी अब समाप्त हो चुकी है।

रामरतन (**बहुत धीमा स्वर**) ओह...मैं...मैं...कहां हूं? (**उसाँस**)

डाक्टर अपने घर में।

रामरतन तुम...तुम...कौन हो?

डाक्टर मैं डाक्टर हूं औरआ पका इलाज करने के लिये बुलाया गया हूँ।

रामरतन आप डाक्टर हैं? आप मेरा इलाज करने आये हैं? मेरा इलाज...? आप मुझसे घृणा नहीं करते?

डाक्टर डाक्टर किसी से घृणा नहीं कर सकता, थानेदार साहब!

रामरतन आप...आप विचित्र डाक्टर लगते हैं।

डाक्टर (**हंसकर**) विचित्रता बहुत बुरी नहीं होती थानेदार साहब। कुछ लोग उसे बहुत पसन्द करते हैं, पर आप इन बातों की चिन्ता क्यों करते हैं?

रामरतन चिन्ता?...नहीं, नहीं...मैं वैसे ही पूछता था। क्योंकि...क्योंकि...

डाक्टर अब छोड़िये भी, जो कुछ भी है मैं जानता हूं।

रामरतन (**एकदम**) आप मेरा रोग जानते हैं?

डाक्टर जानना नहीं, जानना चाहता हूँ। अगर आप बता देंगे तो बड़ी कृपा होगी।

रामरतन मैं बताऊँ आपको ?

डाक्टर जी हां, आपका रोग आप ही बता सकते हैं।

रामरतन पर क्या मैं अपना रोग जानता हूँ। जानता होता तो क्या...तो क्या इस तरह तड़पता ?

डाक्टर अपना रोग किसी से छिपा नहीं रहता। यह बात दूसरी है कि वह उसको देखने से इन्कार कर देता है, इसीलिये तड़पता है।

रामरतन (चकित) मैं आपका मतलब नहीं समझा ?

डाक्टर मतलब समझने के लिये आपको अपनी कहानी सुनानी होगी।

रामरतन मेरी कहानी !

डाक्टर जी हाँ, आपकी कहानी। आपकी कहानी भूत बनकर आपके पीछे पड़ी हुई है। आपकी कहानी तिल-तिल करके आपको गला रही है।

रामरतन (कांपकर) डाक्टर...डाक्टर आप क्या...

डाक्टर मैं समझता हूं, मैं बहुत गलत नहीं कह रहा।

रामरतन ग़लत नहीं...ग़लत नहीं डाक्टर ! आप सत्य कह रहे हैं। (एकदम) पर आप यह कैसे जानते हैं ?

डाक्टर (हंसकर) एक डाक्टर को भी क्या बताना पड़ेगा कि वह रोगी के रोग को कैसे पहचान लेता है। पर मैं अभी उसे जान कहां पाया हूँ। आप अपनी कहानी मुझे सुनाने की कृपा करें।

रामरतन आप सुनेंगे ?

डाक्टर तभी तो पूछ रहा हूँ।

रामरतन तब...तब मैं आपको अपनी कहानी सुनाऊँगा।

डाक्टर सुनाइये, मैं सुन रहा हूँ।

रामरतन (गहरा स्वर) मुझे ठीक याद है कि उस दिन अगस्त की १८ तारीख थी और वे लोग मेरे थाने पर झण्डा फहराना चाहते थे।

डाक्टर कौनसा झण्डा ?

रामरतन तिरंगा।

डाक्टर अच्छा वे स्वतन्त्रता के सैनिक थे।

रामरतन आप उन्हें कुछ भी कह सकते हैं, पर वे विद्रोही थे। देश के शासक जब अपने अस्तित्व को लेकर युद्ध में फंसे हुए थे तो ये विद्रोही उसकी पीठ में छुरा भोंकने को आतुर हो उठे। उन्होंने एक स्थान पर नहीं, समूचे देश में एक साथ सिर उठाया और देश के प्राणों को संकट में डाल दिया। उन्होंने आग लगाई, तार काटे, रेल उखाड़ी और पुल उड़ा दिये।

डाक्टर (हंसकर) और आपने इन्हीं विद्रोहियों को मार डाला।

रामरतन हां, मैंने इन्हीं विद्रोहियों को मारा था, विद्रोह का दण्ड मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। मुझे इस बात का दुःख नहीं है। मैंने वही किया जो मुझे करना चाहिये था, जो कोई भी कर्त्तव्य-परायण व्यक्ति कर सकता है और फिर मैंने उन्हें धोखा देकर नहीं मारा था। मैंने उन्हें चेतावनी देकर सामने खुले युद्ध में मारा था। तब मारा था जब उन्होंने लौट जाने से इन्कार कर दिया था; जब उन्होंने मेरी आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया था। वे बाग़ी थे और बाग़ियों को सदा गोली मारी जाती है। गोली डाक्टर...

(अपार भीड़ का कोलाहल, नारों का कर्णभेदी स्वर)

भीड़का स्वर स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। विदेशी शासन के प्रति विद्रोह करना, हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। देश हमारा है, हम देश के शासक हैं।

एक युवक भारत अब स्वतन्त्र है। उसका राज्य अब प्रजा का राज्य है। उसके प्रत्येक गढ़ पर अब स्वतन्त्रता की पताका फहरायेगी। मैं इस थाने पर अपनी राष्ट्रीय पताका फहराने आया हूं।

रामरतन लड़के तुम जहां हो वहीं रहो। जानते हो तुम मृत्यु के मुख में बढ़े आ रहे हो।

युवक जो आपके लिये मृत्यु का मुख है, वही मेरे लिये माँ की गोद है। माँ की गोद में आने के लिये मुझे कोई भय नहीं है।

रामरतन वाचाल युवक तुम हठ मत करो, कहीं...

युवक (अट्टहास) कहीं आप कुछ कर न बैठें। आपको मुझ पर दया आ आ रही है।

रामरतन हाँ, तुम्हें अभी बहुत दिन जीना चाहिये।

युवक धन्यवाद ! विश्वास रखिये, मैं अन्तिम साँस तक जीता रहूँगा; परन्तु यदि आपको मुझ पर दया आ रही है तो लीजिये यह पताका अपने हाथों से इस भवन पर लहरा दीजिये।

रामरतन (क्रुद्ध) लड़के !

युवक हा हा हा, मैं जानता था, ये मगरमच्छ के आंसू हैं।

रामरतन सावधान जो आगे बढ़े।

युवक आपकी चेतावनी के लिए धन्यवाद। मैं सावधानी से आगे बढ़ूंगा।

रामरतन मैं कहता हूं कि आगे बढ़े तो गोली मार दूंगा।

युवक उसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। वह आपका काम है।

रामरतन युवक फिर सोच लो।

युवक सोचने का अवसर बीत गया। यह काम करने का अवसर है। मृत्यु मनुष्य की चिर-संगिनी है परन्तु मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने की घड़ियां बार-बार नहीं आतीं।

रामरतन तुम नहीं रुकोगे युवक। मैं फायर करता हूं (हँसी का स्वर) तो लो (गोली का स्वर, कोलाहल)

रामरतन (उत्तेजित) मैं अब भी कहता हूं, आप लौट जायें और इस युवक की कहानी से शिक्षा लें।

समवेतस्वर यह युवक हमारा आदर्श है। हम झंडा फहरा कर लौटेंगे, हम झण्डा फहरा कर लौटेंगे।

दूसरा युवक हां, हम झण्डा फहरा कर लौटेंगे। हम अपने साथी की लाश को साक्षी करके झण्डा फहरा कर लौटेंगे।

रामरतन सावधान, लड़के! तू कहां जा रहा है, खबरदार जो झण्डा छुआ।

युवक झण्डा छूने के लिये मुझे आपकी आज्ञा की आवश्यकता नहीं है। थानेदार साहब, आपकी आज्ञा सुनने वाले आपके पीछे हैं।

रामरतन युवक, बहुत बढ़-बढ़-कर बातें न करो।

युवक मैं बातें करने नहीं, काम करने आया हूं।

रामरतन बस एक कदम नहीं...वहीं ठहरो...युवक तुम नहीं सुनते...नहीं सुनते...तं लो।

(गोली का कठोर शब्द, थानेदार अट्टहास करता है)

रामरतन मैं काम करने आया हूं, तुम्हारा काम हो चुका है। अब आओ कौन आता है।

एक वृद्ध **(आगे बढ़ कर)** घबराओ नहीं, थानेदार साहब, मैं आ रहा हूं।

रामरतन तुम बाबाजी, तुम यहां कहां भूल पड़े? तुम्हें तो घर जाकर कोमल शैया पर आराम करना चाहिये।

वृद्ध धरती से बढ़ कर कोमल शैया कोई नहीं होती। थानेदार साहब, सावधान मैं आ रहा हूं।

रामरतन अहाहा...सावधान। सावधान तुम्हें होना है बाबाजी। भूलिये नहीं मैं आपके श्वेत केशों का विचार नहीं करूंगा।

वृद्ध और मैं आपके पद का। मैं इस भवन पर झंडा लहरा कर लौटूँगा।

रामरतन तुम्हारा साहस बढ़ता जा रहा है, मैं कहता हूं अब एक पग भी नहीं...क्या...तुम आगे बढ़े...तुम्हारा इतना साहस...तो लो...

(गोली, वृद्ध का पतन, भीड़ में उत्तेजनामय जयकार)

रामरतन बाबा धरती की कोमल शैया पर लेट गये। अब कौन आता है दादा का पोता।

एक बालक मैं...मैं अपने दादा का पोता हूँ।

रामरतन (चकित) बालक तुम।

बालक हाँ मैं।

रामरतन जाओ बालक, तुम्हारी मां तुम्हें खोजती होगी।

बालक (हंसकर) मेरी मां मुझे कभी नहीं खोजती। मैं हमेशा उसकी गोद में रहता हूं। वह तो आप ही उसकी गोद में से भटक गये हैं।

रामरतन बालक !

बालक क्षमा करें, मैं आपसे बहस नहीं कर सकता। मुझे झंडा लहराना है।

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा।
झंडा ऊंचा रहे हमारा।

(समवेत स्वर उठता है। उठता रहता है। थानेदार चिल्लाता है)

रामरतन बालक, रुक जाओ। बालक, रुको...रुको बालक...बालक...नहीं रुकते ?...बालक...तो लो विद्रोही बालक, तो लो।

(गोली का स्वर। कांपता हुआ गीत का स्वर, 'चाहे प्राण भले ही जावें'। डाक्टर की उच्छ्वासों का स्वर उठता है।)

गोमती डाक्टर साहब ! डाक्टर साहब आपको क्या हो रहा है ? आप ऐसे सांस क्यों ले रहे हैं ? आपकी आंखों से आंसू क्यों बह रहे हैं।

डाक्टर (भावावेश) ये मेरे सौभाग्य के आंसू हैं श्रीमती ! मेरे देश के सौभाग्य के...(एकदम संभलकर)...क्या, आपने कहा मेरी आंखों में आंसू क्यों हैं ? (हंसकर) श्रीमती जी, आंखें केवल देखती हैं सोचती नहीं। थानेदार साहब ने उस घटना का इतना सच्चा वर्णन किया है कि मुझे ऐसा लगा जैसे मैं स्वयं वहां उपस्थित था। जैसे मेरी आंख उन विद्रोहियों को गर्व से आगे बढ़ते और हंसते हंसते प्राण देते देख रही है...पर यह न जाने कौन सी कमजोरी है कि मृत्यु को देख कर या उसकी बात सुनकर आंखें रो ही पड़ती हैं। लेकिन खैर...हां तो, थानेदार साहब, फिर क्या हुआ ?

गोमती डाक्टर साहब ! डाक्टर साहब ! अब बन्द कर दीजिए मैं हाथ जोड़ती हूं...

डाक्टर श्रीमतीजी, चिन्ता मत कीजिए। हां, थानेदार साहब, उसके बाद क्या हुआ ?

रामरतन (हांपने लगता है) उसके बाद, डाक्टर ! उसके बाद वह जनसमूह पागल हो उठा। उनकी अहिंसा की पोल खुल गई। उन्होंने थाने में आग लगा दी। उन्होंने ईंट, पत्थर, लाठी जो कुछ भी मिला उससे सिपाहियों को पीटा। उन्होंने किसी की आंख फोड़ डाली, किसी की टांग तोड़ डाली, उन्होंने हत्यायें की, उन्होंने...विनाश का...प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया।

डाक्टर (हंसकर) और तब आप अंधाधुन्ध गोलियां चलाते रहे और जब वे आपकी गोलियों को लील कर आगे बढ़े तो आप भाग निकले।

रामरतन डाक्टर ! डाक्टर ! आप जानते हैं, आप कहां थे ? क्या आप, क्या आप उन्हीं में थे ?

डाक्टर मैं ! जी नहीं, मैं उन दिनों जेल में था। पिछले साल ही छूटा हूँ। पर मैं जानता हूं ऐसे अवसरों पर अकसर ऐसा ही होता है। थानेदार

साहब, अक्सर ऐसा ही होता है (हंस कर) जो हिंसा की शक्ति का सहारा लेकर चलना सीखते हैं, उन्हें एक दिन भागना ही पड़ता है। वे कर्त्तव्य के लिये प्राण देना नहीं, प्राण लेना जानते हैं। पर मुक्ति केवल विसर्जन में है, केवल विसर्जन में।

रामरतन (और भी कातर) डाक्टर साहब...आप क्या कह रहे हैं। आप ...आप...

(सहसा स्वर धीमा पड़ जाता है, नीलरतन एकदम चीखता है)

नीलरतन डाक्टर साहब, पिताजी फिर बेहोश हो गये।

गोमती डाक्टर साहब, इस प्रकार तो...

डाक्टर इस प्रकार तो वे मर जायेंगे...मैं समझता हूँ, श्रीमतीजी, मृत्यु इनके लिए वरदान है।

गोमती नहीं नहीं, डाक्टर, ऐसा न कहिए, आप इन्हें किसी प्रकार बचाइये, रोकिए, इनके सांस की गति कितनी धीमी पड़ गई है।

डाक्टर सांस की गति धीमी पड़ जाना निस्संदेह बुरा है। जिस समय वह रुक जायगी तभी इनको शान्ति मिलेगी। पर नाटक समाप्त नहीं हुआ है। अभी तो अंतिम अंक खेला जाना शेष है। विश्वास रखिये, तब तक ये बोलते रहेंगे।

गोमती (बेबस) डाक्टर, मैं कुछ नहीं समझती। आप क्या कह रहे हैं?

डाक्टर तभी नहीं समझीं, जब समझने की आवश्यकता थी। अब क्या समझोगी? आप सदा इनकी सुख-सुविधा की एक मशीन बनी रहीं। मशीन आज्ञा का पालन कर सकती है, उसको समझ नहीं सकती।

गोमती डाक्टर!

डाक्टर क्या मैं गलत कह रहा हूं?

गोमती डाक्टर सच बताइये आप कौन हैं ? आप इनका इलाज करने आये हैं या प्राण लेने ?

डाक्टर इनका इतना सौभाग्य कहां जो इतनी सरलता से प्राण त्याग कर सकें। वह देखिये, वे स्वस्थ हो रहे हैं।

(रुदन का स्वर, देखते देखते रामरतन सुबकने लगता है)

गोमती डाक्टर साहब, आप मुझे क्षमा कर दें, मैं पागल हो गई थी। आप किसी तरह इन्हें अच्छा कर दें, किसी तरह इन्हें होश में ला दें।

डाक्टर ये होश में हैं, श्रीमती जी ! आप घबराइये नहीं। (रोगी से) कहिये आप की तबीयत कैसी है ?

रामरतन (सांस खींच कर) अब बेहतर है। पर डाक्टर साहब...

डाक्टर जी।

रामरतन डाक्टर साहब, मुझे ऐसा लगता है जैसे मैंने एक भयंकर स्वप्न देखा है।

डाक्टर आपने स्वप्न देखा है, भयंकर स्वप्न। क्या था वह ?

रामरतन वह क्या था, क्या बताऊं। मुझे ऐसा लगता है, जैसे मैं अपने जीवन को देख रहा हूं, जैसे मैं स्वयं अपने जीवन का दर्शक बन गया हूँ।

डाक्टर जब आदमी अपने जीवन का स्वयं दर्शक बन जाता है तो जीवन का उद्देश्य पूरा हो जाता है।

रामरतन आपकी बात मेरी समझ में नहीं आती, डाक्टर साहब मुझे ऐसा लगता है।

डाक्टर कैसे लगता है ?

रामरतन जैसे आप डाक्टर नहीं हैं।

डाक्टर मैं डाक्टर नहीं हूँ (हंसता है) तो क्या हूँ ?

रामरतन स्वयं विधाता या उसका कोई अंश।

डाक्टर (एकदम हंस पड़ता है) विधाता विधाता...थानेदार साहब, जिस समय आपने विद्रोही जनता के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की थी। क्या उस समय आप अपने को विधाता से कम समझते थे। जिस समय उन तथाकथित विद्रोहियों ने झंडे के लिए प्राणों की आहुति दी, क्या उस समय वे अपने को विधाता के अतिरिक्त कुछ और समझते थे ? प्रश्न विधाता होने का नहीं है, प्रश्न निर्माण की रक्षा का है।

रामरतन आप शायद ठीक कह रहे हैं, डाक्टर !

डाक्टर डाक्टर सदा ठीक कहता है। पर, थानेदार साहब, आप इन बातों की चिन्ता क्यों करते हैं ? आप अपने स्वास्थ्य की चिन्ता कीजिये। आपकी पत्नी, आपका पुत्र—ये सब आपके लिये कितने दुखी हैं।

रामरतन वे दुःखी हैं। मैं जानता हूँ। पर इस दुःख का कारण मोह है।

डाक्टर मोह ? आप मोह को जानते हैं ?

रामरतन जानता ही नहीं, उसके कारण जी रहा हूं, डाक्टर ! तभी तो मेरे प्राण तड़प रहे हैं।

डाक्टर आप इतना जानते हैं, थानेदार साहब ! फिर भी आपको मोह सताता है।

रामरतन मैं इतना जानता हूं...डाक्टर ! पहले तो मैं कुछ नहीं जानता था। पर...पर...जब आपने मुझे अपने जीवन का स्वयं-दर्शक बना दिया तो न जाने क्या हुआ मेरे दिल में रोशनी होती चली गई। मैंने देखा, मैंने समझा।

डाक्टर क्या समझा आपने ?

रामरतन मैंने समझा कि जो कुछ अब तक मैंने किया, वह शायद ठीक नहीं था।

डाक्टर सच ?

रामरतन हाँ, डाक्टर साहब ! यदि ऐसा न होता तो क्यों वे भूत बन कर मुझे मारने आते ? क्यों वे तिल-तिल कर मुझे गलाते ? डाक्टर, भय मृत्यु से भयंकर है । मैं भय से मुक्ति चाहता हूं ।

(धीरे-धीरे उत्तेजित होता है)

नीलरतन पिताजी !...पिताजी !

गोमती नहीं, नहीं, आप ऐसे न बोलिये; ऐसे न बोलिये, डाक्टर ! डाक्टर ! इन्हें देखो, ये फिर...

डाक्टर (थका स्वर) शोर न करो । मैं शोर नहीं, शान्ति चाहता हूं । अमर शान्ति ।

डाक्टर थानेदार साहब, आप मोही के साथ-साथ लोभी भी हैं । आप दंड से बचना चाहते हैं ।

रामरतन डाक्टर !

डाक्टर आप चौंकते हैं । बोलो, क्या मैं झूठ कह रहा हूं ? जिस पाप को आपने अभी स्वीकार किया है, उसका बदला क्या मृत्यु है ? मृत्यु बड़े पुण्य से प्राप्त होती है, थानेदार साहब ! यों जानने को तो प्रतिक्षण लाखों प्राणी चले जाते हैं । मृत्यु उनका वरण नहीं करती ।

रामरतन तो...तो क्या मैं इसी प्रकार तड़पता रहूंगा । नहीं, नहीं डाक्टर साहब, मैं हाथ जोड़ता हूं । मुझे इस रौरव नरक से निकाल लो। मुझे शान्ति से मरने दो । मुझे इन्जैक्शन न लगाओ । मुझे अब दवा न दो ..

डाक्टर आपको इन्जैक्शन न लगाऊँ ? दवा न दूँ ? आपको शान्ति से मरने दूँ । आपको...थानेदार साहब ? आपको ?

(सहसा भावावेश)

गोमती डाक्टर, सच बताइये आप कौन हैं ? आपका बर्ताव बड़ा अद्भुत है । आपकी बातें बड़ी रहस्यमयी हैं ।

डाक्टर आपके पति का रोग स्वयं एक रहस्य है।

गोमती तभी तो पूछती हूं, उस रहस्य को जानने वाले आप कौन हैं?

डाक्टर मैं उस रहस्य को जानने वाला कौन हूँ? आपने ठीक समझा। मैं उस रहस्य को जानता हूं। जानता ही नहीं, समझता और अनुभव भी करता हूं। और यह सब इसलिये करता हूँ, क्योंकि आपके पति की बीमारी से मेरा भी सम्बन्ध है।

(गहरा अचरज)

गोमती डाक्टर!...

नीलरतन डाक्टर साहब, आप क्या कह रहे हैं?

रामरतन आपका मेरी बीमारी से सम्बन्ध है? आपका?...आप कौन हैं? ...आप...आपकी सूरत...आपकी वाणी...

डाक्टर (भावावेश) मेरी सूरत...मेरी वाणी...आप मुझे पहचानते हैं।

रामरतन नहीं, नहीं, मैं आपको नहीं पहचानता। पर...पर लगता है, जैसे आपको कहीं देखा है, जैसे आपकी वाणी कभी सुनी है। वह स्वर दूर, बहुत दूर से हृदय में प्रवेश करता जान पड़ता है...नहीं.... नहीं...मैं आपको नहीं पहचानता डाक्टर, आप कौन हैं?... कौन हैं?

डाक्टर मैं कौन हूं?

रामरतन हाँ, आप कौन हैं?

डाक्टर सुनोगे...

रामरतन हाँ, आप कौन हैं? बतलाइये, आप कौन हैं?

डाक्टर (क्षणिक सन्नाटा) तो, सुनिये मैं उस विद्रोही बूढ़े का पुत्र और उस विद्रोही बालक का पिता हूं, जिन्हें आपने अपनी गोली का निशाना बनाया था, (अट्टहास) आपने पिता और पुत्र को एक साथ मौत के घाट उतार दिया था, क्योंकि वे विद्रोही थे, क्योंकि वे

विदेशी सरकार का तख्ता उलटना चाहते थे, क्योंकि वे अपने देश को प्यार करते थे।

रामरतन (कांप कर) डाक्टर ! डाक्टर ?

गोमती (चकित विस्मित) डाक्टर...र...

रामरतन क्या...क्या...उफ...उफ... (चीख)

गोमती (रोती है) डाक्टर...डाक्टर...उन्हें देखो,...उन्हें देखो, डाक्टर! आप कोई भी हों, आप सबसे पहले डाक्टर हैं, और डाक्टर का कर्तव्य है अपने रोगी के प्राण की रक्षा करना !

डाक्टर (एकदम गम्भीर) आप मुझे मेरा कर्तव्य सुझा रही हैं। मैं अपने कर्तव्य को जानता हूं, श्रीमतीजी ! निश्चिन्त रहिये, मैं आपके पति के प्राणों की रक्षा करूँगा ! अवश्य करूँगा। उनकी रक्षा मृत्यु में है, केवल मृत्यु में, और वह मृत्यु आ पहुंची है। इनकी मृत्यु आ पहुंची है (फिर अट्टहास) श्रीमतीजी, आप रोना बन्द कीजिये और इन्हें शान्ति से सो जाने दीजिये।

रामरतन (अन्तिम प्रयास) मैं ..मैं...डाक्टर...मैं...क्षमा...

(हिचकी और समाप्ति)

नीलरतन (रोकर) पिताजी...पिताजी...

गोमती (घोर रुदन) स्वामी...स्वामी...स्वामी ई ई...

(पृष्ठ-भूमि में करुण शोकपूर्ण संगीत उठता है और फिर शान्ति—पूर्ण शान्ति)

स्वोक्ति

इसे स्वगत का परिवर्द्धित रूप कहा जा सकता है। किसी पूर्व घटना को लेकर पात्र अपनी उलझी एवं विक्षिप्त अन्तर्वृत्तियों का विश्लेषण करता है। इसमें कथावस्तु का सुसम्बद्ध होना अनिवार्य नहीं; परन्तु भावना की प्रधानता अनिवार्य है। रंगमंच पर उपस्थित किसी वस्तु या किसी मूक पात्र को लक्ष्य करके भी विश्लेषण हो सकता है।

प्रस्तुत स्वोक्ति पर ध्वनि नाट्य का प्रभाव है। इसीलिये कथा सुसम्बद्ध है। स्वोक्ति को मोनोड्रामा, मोनोलॉग तथा एक पात्री नाटक भी कहते हैं।

सड़क

(प्रारम्भिक संगीत के बाद पदचाप। पृष्ठभूमि में मोटर, बस आदि का शब्द। उसी के साथ नारि का स्वर उठता है।)

कितना शोर, कितना हंगामा, कितनी जगमगाहट है सड़कपर! बराबर, बिना रुके सैलाब की तरह, इधर-से-उधर, उधर-से-इधर, एक न टूटनेवाला सिलसिला चला जा रहा है, चला जा रहा है। वह मोटर कैसी तेजी से भाग रही है! अक्सर जिन्दगी भी इसी तेजी से भागती है। सुना है, यह धरती, ये ग्रह, ये पिंड, ये भी इसी तेजी से दौड़ते हैं, मानो ये सब समय से आगे निकल जाना चाहते हैं। और वह भारी-भरकम बस? वह रुक गई। नहीं, रुकी कहाँ, वह तो सवारियाँ उतारती है, चढ़ाती है। यह भी एक दुनिया है। देखने में रुकती जान पड़ती है, पर उसका प्रवाह क्या रुकता है? करोड़ों इन्सान रोज मरते और पैदा होते हैं, पर उसकी गति पर कभी अंकुश नहीं लगता। वह बराबर चलती रहती है। और वह देखो, अपनी टापोंसे सड़क को कँपाते घोड़े तांगों को लेकर कैसे भाग रहे हैं। क्या सूरज के रथ के घोड़े भी इसी तेजी से दौड़ते हैं? क्या उनके तरनालों की आवाज इसी तरह गूँजती है? यह जो दिन उगते ही शोर मचता है, यह शायद वही गूँज तो है। हाँ, यह वही गूँज है।...और वह रिक्शावाला, अपने फेफड़ों पर अपनी जिन्दगी के साथ सवारियों का बोझा डाले

कैसे सिर झुकाये, नंगे पैर दौड़ा चला जा रहा है। वह मानो याद दिलाता है यह एक इन्सान का नहीं, बल्कि समूची इन्सानियत का सिर झुका है। क्या कराहती हुई मानवताकी जलती आंखोंसे गिरी चन्द बूँदें सड़ककी छाती में तूफ़ नहीं पैदा करतीं ? बड़े-बड़े ट्रैक्टर, बड़ी-बड़ी लारियां, फ़ौलादी पहियों वाले मोटर, तरनालों से चोट करते हुए घोड़े—इन सबकी चोट सड़क के दिल में गूँ उठती है ; पर इन आँसुओं और पसीने की बूँदों की मूक वेदना यह कैसे सह ले है। (धीमा स्वर) कैसे सह लेती है ! (विराम) जैसे मैं सह लेती हूं ! (चौं कर) मैं...जैसे मैं सह लेती हूँ ! मुझसे इस बातका क्या सम्बन्ध है ? हाँ, मुझ सड़क का क्या सम्बन्ध है ?...सम्बन्ध है। औरत और सड़क का पूरा-पूरा सम्ब है।...औरत और सड़क का पूरा-पूरा सम्बन्ध है। (धीमी स्वर) औ और सड़क का पूरा-पूरा सम्बन्ध है। (सहसा हंसकर) अब समझ में आया, समझ में आया। मैं सड़क को बहुत पसन्द करती हूँ। जब यहाँ आती हूं, साँझ-सवेरे इस खिड़की में बैठकर इसे देखा करती हूं। मैं कभी इससे ऊबती न कभी रूठती नहीं। (विराम) भला, कोई कभी चाँद से ऊबा है ? क्या क किसी ने सूरज से नफ़रत की है ? दिन और रात, धरती और आकाश—ये न-जाने कबसे चले आ रहे हैं और न जाने कब तक ऐसे ही चले जायेंगे। को इनसे ऊबता नहीं। (विराम) तो वे कह रहे थे—वे यानी मेरे पति कह थे—कि औरत और सड़क में बड़ी समानता है।

"क्या समानता है ?"

"तुमने बाबा तुलसीदास की रामायण नहीं पढ़ी ?"

"क्या लिखा है उसमें ?"

"उसमें लिखा है : 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न अधिकारी'।"

"तो..."

"तो क्या ?"

कुछ नहीं, बस ढोल के स्थानपर सड़क कर लीजिए—'सड़क गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़नके अधिकारी।' स्त्री की तरह सड़क भी पीटने पर ही ठीक रहती है। इसलिए टैंक, ट्रक, लारी, बस, मोटर, घोड़ागाड़ी, यहां तक कि इन्सान–सब उसे अपने पैरो से पीटते रहते हैं। (हंसती है) खूब, बहुत दूर की सूझी तुम्हें! भई, बलिहारी है तुम्हारी बुद्धि को। (हंसती है) दाद देती हूँ तुम्हारी इस अनोखी सूझ पर। सचमुच इस खोज पर कोई भी रायल एशियाटिक सोसाइटी का मेम्बर बन सकता है। (हंसती है) कभी-कभी मेरे पति को भी क्या दूर का मजाक सूझता है! मजाक! क्या यह मजाक है?...हाँ, मजाक नहीं, तो और क्या है, यह मजाक नहीं है, तो क्या है? यह सचाई है। यह एक सचाई है, जो औरत को औरत बनाती है; जो उसे वह ताकत देती है, जिसके सहारे वह सारी सृष्टि का भार अपने कन्धों पर उठाए रहती है। (विराम) सड़क के सीने पर जैसे पत्थर कुटते हैं, दुमुंट चलते हैं। (पृष्ठभूमि में दुमुंट चलने और हइया-हो की आवाज) दानव-जैसा स्टीम-रोलर चलता है। (रोलर की सीटी) जिस तरह उसके नीचे आकर इन्सान चटनी बन जाता है, उसी तरह औरत के सीने में अनगिनत तमन्नाओं और हसरतों की ख्वाबगाह है। उसपर समाजी डर और बन्धन के दुर्मुट चोट करते हैं और फिर कर्तव्य का स्टीम-रोलर सबको पीसकर समतल कर देता है। (विराम) सीमेंट और तारकोल के नीचे सड़क की भावनाओं की समाधि बनती है। तभी तो रिक्शावाले के पसीने की बूंदों का उसपर कोई असर नहीं होता। उसी तरह नारी की तमन्नाओं की चिता समाज और कर्तव्य की वेदी पर चिनी जाती है। (विराम) युगों पहले इसी समाज और कर्त्तव्यके कारण एक सीता जिन्दा धरती में समा गई थी। युगों बाद फिर एक यशोधरा को कहना पड़ा था :

मेरे दुख में भरा विश्व-सुख तो क्यों न भरूँ फिर मैं हामी।

बुद्धं शरणम्, संघं शरणम्, धम्मं शरणम् गच्छामि।

अगर यह सड़क बोल सके, तो यह भी यही कहेगी कि जो मेरा दुःख है, वही संसार का सुख है फिर मैं उस दुःख से क्यों इन्कार करूँ? (**विराम**) दुःख, पीड़ा, चोट,...दुख पीड़ा चोट...! कहते हैं, सुख और शान्ति, हमदर्दी और इन्सानियत—ये सब दुःख, पीड़ा और चोट में ही छिपे रहते हैं। जिसने दुःख नहीं उठाया, वह सुख कैसे पायेगा? जो पीड़ा को नहीं जानता, वह प्यार कैसे करेगा? जिसने चोट नहीं खाई, वही दूसरों पर चोट करता है। (**फुसफुसाहट**) हाँ, जिसने चोट नहीं खाई, वही दूसरों पर चोट करता है। चाँदी का डला सिर फोड़ सकता है; पर चोट खा-खाकर जब वह वर्क बन जाता है, तो वह शोभा और शृंगारका कारण हो जाता है। (**विराम**) पीड़ा सहकर नारी भी तो ऊँची उठ जाती है। माँ की पीर ऐसी ही पीर है। यह सारी सृष्टि, यह तमाम संसार, यह सब माँ की पीर की तस्वीर है।

पीर यह कैसी निराली,

प्राण की प्रति साँस में यह झूलती तस्वीर आली।

(**फुसफुसाकार**) पीर यह कैसी निराली...! (**एकदम**) अरे, अरे, वह ताँगा! वह गिरा! (**मोटर की तेज़ आवाज़**) सवारियाँ कूदीं, पर वह औरत और उसका बच्चा! वह बच्चा गिर गया। वह कार...अरे, अरे, वह उसे कुचल देगी—कुचल देगी। (**मोटर का तेज़ी से रुकना, चीख**) पर यह क्या? यह एक युवक तेजी से लपका और बच्चे को उठाकर लेगया। (**विराम**) ओह, वह माँ कैसे रो रही है! कैसे उस युवक की बलाएँ ले रही है! वह माँ है, माँ! (**विराम**) ओह, कितना भयंकर; कितना रोमांचक नजारा है! पर सड़क है कि उसी अपार धीरज से जहाँ-की-तहाँ पड़ी है! माना, वह बोल नहीं

सकती ; पर महसूस तो करती ही होगी। या यह कोई अहिल्या की तरह नारी है, जिसे किसी मुनि ने शाप दे दिया है और यह सोई पड़ी है?...कोई राम ही आकर अब इसे अपनी ठोकर से जगायगा। (विराम) सड़क को राम आकर जगायगा और मुझे? मुझे क्या...हाँ, मुझे कौन जगायगा? मुझपर क्या कुछ कम बीती है? मुझपर? हाँ, मुझपर क्या नहीं बीती? मैंने क्या नहीं देखा, पर मैं क्या कुछ कर सकी? मैं भी इस अन्धी सकड़ की तरह महसूस करके ही नहीं रह गई? पर क्या...मैं क्या सोचने लगी? वही, जो सड़क और नारी में समानता पैदा करता है, जो मुझे सड़क की ओर खींचता है। (उच्छ्वास) क्या...क्या... खींचता है मुझे सड़क की तरफ? (विराम) क्या खींचता है? जैसे तुम जानती ही नहीं! मैं...मैं जानती हूं...मैं जानती हूं। (दबलासे) हाँ, मैं जानती हूं। क्यों नहीं? वह सारी कहानी मुझे ऐसे याद है, जैसे अभी घट रही हो। (उच्छ्वास) क्या कहानी है वह? वह क्या कहानी है—क्या कहानी है? (फुसफुसाकर) कह दूँ! (विराम) :वह एक युवक की कहानी है-उस युवक की, जिसका नाम मुझे याद नहीं। मैंने कभी पूछा ही नहीं। मैंने कभी उससे बातें ही नहीं कीं—नहीं, कभी नहीं कीं। मैंने उसे पहली बार कब देखा, यह भी याद नहीं। हाँ, यह बात बिल्कुल याद नहीं। मैं तुमसे सच कहती हूँ, मुझे कुछ याद नहीं। जबसे याद है, तबसे तो ऐसा लगता था, जैसे-मैं युग-युग से उसे देखती आ रही हूं। वह रोज इसी सड़क से गुजरता था। रोज जैसे ही सूरज की किरणें ठंडी पड़तीं, वह लम्बे-लम्बे डग रखता हुआ इधर से आता और उधर निकल जाता। कभी-कभी यहाँ रुकता भी था। उसके लम्बे बाल पेशानी को ढँके रहते। उसकी आँखों में सदा एक हल्की-सी मुस्कान रहती। पर उसकी टोड़ी की दृढ़ता के कारण उसके लम्बे चेहरे पर एक अजीबोग़रीब रौनक छाई रहती। वह रौनक उन इन्सानों के चेहरों पर हुआ करती है, जो दुनिया में कुछ करने के लिए आते हैं। वह भी कुछ करने आया था। (विराम) पर एक दिन जब मैं ठीक समय पर उसे देखने आई, तो वह

दिखाई नहीं दिया। रात हो गई। राहगीरों का आना-जाना करीब-करीब बन्द-सा हो गया। कभी कोई एक-आध मोटर या बस या ताँगा आता और चला जाता। पर उस दिन वह नहीं आया। कई दिन तक नहीं आया। न-जाने मुझे क्या हुआ, रोना आने लगा। मैं सड़क पर गई। उसी लैम्प-पोस्ट के नीचे खड़ी हुई जहाँ वह खड़ा होता था। पर वह नहीं आया, नहीं आया। क्यों नहीं आया? एक दिन वह आया, पर उस दिन उसके हाथों में हथकड़ियाँ थीं। उसके चारों ओर हथियारबन्द पुलिस थी। शोर सुनकर मैं खिड़की पर आई, तो उसे देखा, उसके हाथ बन्धे थे; पर ठोड़ी की दृढ़ता, आँखों की मुस्कान, पेशानी पर छाए हुए लम्बे बाल—सब उसी तरह थे। मैं ठगी-सी रह गई। मेरी आँखों में दुनिया काँप उठी! जबतक कुछ समझूँ, तबतक वह जा चुका था। जी में आया, छाती फाड़-फाड़ कर रो पड़ूँ, पीछे-पीछे भागकर जाऊँ और उसे छुड़ा लूँ और कहूँ, वह मेरा है। पर मैं सँभलूँ, तब तक मैंने अपनी पीठ पर कोमल उँगलियों की थपकन महसूस की। कौन?...सुवीरा, तुम! तुम रो रही हो? नहीं, नहीं, तुम तो हँस रही हो। (फुसफुसाकर) सुवीरा रो रही थी और हँस भी रही थी। और दोनों से परे भी थी। हाँ, वह दोनों से ऊपर थी। वह ठीक तुम्हारी तरह थी, सड़क! तुम्हारी तरह सब भावनाओं से ऊपर थी। वह उस युवक की मँगेतर थी, मँगेतर। हाँ, उसी के लिए तो वह कभी-कभी वहाँ रुकता था। वह देश पर दीवाना था और सुवीरा उसपर। सुवीरा ने जब मुझे सब कुछ सुनाया, तो मैं धक-से रह गई थी, जैसे मेरा खज़ाना लुट गया हो, जैसे किसीने मेरे प्राण खींच लिए हों। (उसाँस) पर मैं उस दिन भी न रो सकी। मेरे मन में द्वेष जो जागा था। हाँ, मैं सच कहती हूं, मैं जल उठी थी। पर...पर...(**एकदम**) नहीं, नहीं, अब मैं कुछ नहीं कहूंगी, कुछ नहीं कहूंगी।

वह देखो, वह सड़क पर कौन है? कौन है वह? वह कैसे भाग रहा है? और...और वह ट्रक...अरे, रुको, रुको, भागने वाले रुको! वह ट्रक आ रही है, रुको। (**चीख़**) आ...(**ट्रक आदि का रुकना, भीड़ का शोर**) वह...वह

गिर गया। श्रोह, वह कैसे कर रहा है...कैसे...कर रहा है! उठ नहीं सकता। वह तड़प रहा है! वह भीड़...श्रोह, अब नहीं देखा जाता। सड़क, तुम यह सब कैसे देखती हो! तुम कैसी नारी हो? नहीं, नहीं, तुम शापग्रस्ता अहिल्या हो। तुम बज्र हो। तुम पत्थर हो। तुम नारी नहीं हो। तुम्हारी छाती पर खून पड़ा है श्रौर तुम उसी तरह लेटी हुई हो! तुम हुँकार नहीं उठतीं। तुम फट नहीं जाती (विराम, स्वर दूर जाता है श्रौर फिर पास आता है) तुम्हारे देखते-देखते यंत्र ने इन्सान-को कुचल दिया। (उच्छ्वास) यंत्र ने इन्सान को कुचल दिया। यंत्र ने...। यंत्र क्यों? इन्सान भी तो इन्सान को कुचलता है। हाँ, इन्सान भी इन्सान को कुचलता है; बल्कि इन्सान ही इन्सान को कुचलता है। (फुसफुसाकर) इन्सान इन्सान को कुचलता है! तुम्हारी छाती पर न-जाने किस-किस इन्सान का खून बहा है। तुम किसे-किसे याद रख सकती हो। किस-किस के लिए शोक कर सकती हो। तुम्हें छुट्टी ही कहाँ मिलती है रुककर रोने श्रौर हँसने की। शायद तभी तुम कड़ी धूप में उसाँस भरती हो। वर्षा में तुम्हारे आँसू बहते हैं। सर्दी में तुम काँपती हो। यह रोना, यह हँसना, यह मरना, यह जीना, यह हर्ष, यह उल्लास, यह तड़पन, यह सिसकन—जैसे सब हवा हैं, उड़ जाते हैं। हवा क्या टिकती है, पर...पर सड़क? मुझे वह सन्ध्या नहीं भूलती, जब यहीं तुम्हारी छाती पर एक पवित्र हस्ती का खून बहा था। श्रोह, उसे याद करके आज भी दिल तड़प उठता है! आज भी एक हूक-सी कलेजे में उठती है! वही कहानी तो है। (विराम) जब मुझे पता लगा कि सुवीरा उसकी मँगेतर है, तो मेरे मन में द्वेष की भट्ठी जल उठी थी, भट्ठी। (अवकाश) मैंने क्या किया था? हाँ, क्या किया था? हाँ, मैं तब आजादी की जंग में कूद पड़ी थी। (हँसकर) मैं उस युवक के पास जाना चाहती थी। मैं उसे अपना बनाना चाहती थी। मैं उसे सुवीरा से छीनना चाहती थी। पर...पर...श्रोह, कैसा है यह पर! (अवकाश) कुछ दिन बाद पता चला, वह जेल से भाग गया है। तब देश में आग लगी हुई थी? खून श्रौर पसीने से धरती तर थी। क्यों, तुम्हें

याद है न कि तुम्हारी छाती पर सदा एक चिपकन सी रहती थी ? एक धूम मची रहती थी। सदा एक धड़कन काँपती रहती थी। याद है, उस दिन हजारों दीवानों ने कैसा जलूस निकाला था और न-जाने कैसे और कहाँ से आकर उसने झंडे को थाम लिया था। हाँ, उसी ने। तब असंख्य कंठ माँ का जयजयकार कर उठे थे। पर वह था उसी तरह दृढ़, मुस्कराता, पेशानी पर बालों की लटें लहराए। मैं एकटक अविश्वास से देखती रह गई थी। पर वह आगे बढ़ा जा रहा था, जैसे सैलाब बढ़ता है, जैसे लहरें बढ़ती हैं, जैसे प्रभंजन बढ़ता है। मैं मुग्ध हो उठी। मैं तब थी भी और नहीं भी। पर तभी सहसा सुना, गोली चली...गोली ...हाँ, गोली चली। दनादन चलती गई और भीड़ भागती गई। ओह, मैं पीछे रह गई थी। इतनी देर में यह काम हो गया ! मैं आगे भागी, तो क्या देखती हूं कि वह आगे बढ़ रहा है, बराबर हर क़दम आगे बढ़ रहा है। मैं चीखी—रुको, रुको। पर वह नहीं रुका, नहीं रुका। गोली छूटी। वह नहीं रुका...गोली छूटी, वह नहीं रुका। मैं चीख कर वहां गिर पड़ी। (सांस बढ़ती है : अवकाश) और जब आँखें खोलीं, तो क्या देखती हूं कि...कि वह वहां खड़ा था और उसके चरणों में एक लाश पड़ी थी। नहीं, नहीं, वह लाश नहीं थी, वह सुवीरा थी...(अवकाश) उसकी मँगेतर, उसकी प्रियतमा, उसकी दुनिया ! उसने अपने प्रियतम के लिए अपने-आपको मिटा दिया। वह अपने प्रियतम में समा गई...(फुसफुसाकर) प्रियतम में समा गई, एक हो गई। और मैं...मैं... ओह, तब मुझपर क्या बीती। वह मैं खुद नहीं जानती। जानने की हिम्मत ही नहीं है। उसके बारे में मौन ही ठीक है, मौन। हाँ, जो वाणी की सीमा से बाहर है, वह मौन का क्षेत्र है। (अवकाश) सड़क, तुम शायद इसीलिए मौन रहती हो। शायद ऐसे-ऐसे बलिदान देखकर ही तुम वाणी खो बैठी हो। (अवकाश) मैं भी मौन थी। मैंने भी वह बात कभी किसी से नहीं कही। अपनी वह लाज मैं आप ही ढो रही हूं। मैंने वह बात कभी किसीसे नहीं कही। मैंने अपनी छाती पर पत्थर रख लिया है। तुम भी पत्थर कुटवाकर ही दुनिया के काम आती

हो। तुम्हें पत्थर बनाकर ही इन्सान दलदलों से बचता है रेगिस्तान में उसके पैर नहीं डगमगाते। (अवकाश) सड़क, तुम कहाँ जाती हो ? तुम्हारी मंजिल कहाँ है ? मैं देखती हूँ कि तुम तो जहाँ आसमान धरती पर उतरता है, वहाँ तक चली जा रही हो। तुम्हारी मंजिल का आखिरी पड़ाव क्या वही है, या उससे परे ? सुना है, उससे परे कोई दुनिया है। उस दुनिया को तो तुम देखती होगी। वहाँ तुमने कभी सुधीरा को देखा है ? क्या वह वैसी ही भोली, प्यार करने वाली और अपने प्रिय के लिए मर-मिटने वाली है ? क्या वह अब भी अपने प्रिय की याद में आँसू बहाती है ? क्या अब भी वह अपने प्रिय की राह देखती तुम्हारे किनारे आकर बैठती है ? क्या तुम उसके पैरों की थपकी सुनती हो ? क्या तुम उस विरह की बावली की आँखों के आँसुओं से जल उठती हो ? (**विराम**) ओह, मैं क्या बहकी-बहकी बातें करने लगी ! नहीं, नहीं, मैं इस तरह मन की कमजोरियों का शिकार नहीं बनूँगी। (दृढ़ता से) मैं अब पत्नी हूँ। मैं अब माँ हूँ। मैं उन बातों को याद नहीं करूँगी। अब तो मेरे पति ही मेरी दुनिया हैं। मेरे पति ही मेरे जिन्दगी के मोड़ और मंज़िल.... (अवकाश) मोड़ और मंज़िल। सड़क तेरी ज़िन्दगी में भी तो मोड़ है ? औरत की ज़िन्दगी की तरह मोड़ ! तेरे हर मोड़ पर भी खतरा होता है। औरत की जिन्दगी के हर मोड़ पर भी खतरा होता है। मासूम बच्ची के रूप में औरत ज़िन्दगी की राह पर चलती हुई जब पहले मोड़ पर आती है, तो जवानी अँगड़ाई लेने लगती है। दूसरा मोड़ उस की छाती में तूफ़ान पैदा करता है। एक और मोड़ होता है, जो तूफ़ान को लोरियों के रूप में बदल देता है। ये मोड़, ये मंज़िलें, ये मील के पत्थर—ये अलग-अलग होकर भी एक ही राह के रूप में हैं। वैसे ही माँ, बहन, बहू, बेटी एक ही नारी के रूप हैं ; क्योंकि उसकी आत्मा एक है। सड़क भी एक है ; क्योंकि धरती एक है। एक इन्सान, एक धरती, एक भावना ? हाँ, भावना भी एक है। माँ, बहन, बहू, बेटी जैसे एक नारी के रूप हैं, वैसे ही ममता, स्नेह, प्रेम और वात्सल्य; ये भी एक ही भावना के रूप हैं।

मैं कहाँ-से-कहाँ पहुंच गई। सड़क से अपनी समानता करते-करते मैंने अपने जीवन को कितना कुरेद डाला। पर सड़क, तुम एक बार जिसकी हो जाती हो, सदा के लिए उसी की रहती हो। लेकिन मैं हूं कि जिसे अपना बनाना चाहती थी, उसे न बना सकी और जिसने मुझे अपना बनाया, उसके प्रति भी विश्वासघात करती हूं...विश्वासघात। हाँ विश्वासघात...। नहीं, नहीं...। नहीं कैसे! उसकी याद करना, खिड़की पर आकर रोज सड़क को देखना यह अपने पति के साथ विश्वासघात नहीं, तो और क्या है?...नहीं, नहीं, मैं उनसे प्रेम करती हूं। मैं उनसे विश्वासघात नहीं कर सकती। उनकी धड़कन में मेरी धड़कन है। उनकी हर साँस के साथ मेरी साँस गिरती-उठती है। पर...पर...नहीं। नहीं, नहीं, कोई पर नहीं। मैं जाती हूँ। मैं अब कभी सड़क को नहीं देखूंगी, कभी नहीं। पर... पर वह...। वह क्या? वह कौन? हाँ, वह कौन धीरे-धीरे उस लैम्प-पोस्ट के पास आ रहा है? वह वहाँ खड़ा है? उसके पीछे वह और कौन है? एक युवती। वे बातें कर रहे हैं...। वे मौन हो गए। वह युवक आगे बढ़ रहा है। अरे, वह तो ठीक वहाँ आ गया, जहाँ सुवीरा गिरी थी, सुवीरा—बीच सड़क में वह झुक रहा है। मोटरें और बसें उसके दोनों ओर दौड़ रही हैं। ओह, वह क्या कर रहा है, क्या कर रहा है? ओह, उसने वहाँ की धूल माथे पर लगा ली। उसकी आँखें भर आईं। आँसू टपक पड़े! कौन है, कौन? ओह, यह तो वही है, वही सुवीरा का पति, सुवीरा का आराध्यदेव! वही आँखें, वही ठोढ़ी, वही पेशानी! वह...वह सुवीरा को प्रणाम करने आया है। विवाहित है। ओह...ओह, वह कैसे खड़ा है! निडर, निश्चल। उसने शादी करली...उसने शादी कर ली। (स्वर रुँध जाता है) उसने शादी करली। (श्वास : अवकाश) वह लौट रहा है। और वह कार? वह कार तेजी से आते-आते कैसे रुक गई? उसमें से कोई तेजी से उतर रहा है। (एक दम) अरे, यह तो मेरे पति हैं। वे कैसी तेजी से उसकी ओर बढ़ रहे हैं और...! ओह, वे दोनों तो एक-दूसरे से चिपट गए! ओह, ओह, यह क्या है, यह क्या हो गया!

ओह, मैं क्या करूँ, क्या करूँ ? यह क्या हो रहा है, जिसे मैं प्रेम करती थी, जिसे मैं अपना बनाना चाहती थी, वह आज स्वयं मेरे घर आ रहा है— मेरे घर, मेरे पति का मित्र बन कर ! (फुसफुसाकर) जिसे पति होना था, वह पति का मित्र ! (चीखकर) नहीं, नहीं, मैं यह क्या सोच गई ! यह विश्वास-घात है। यह दग़ा है। यह पाप है।...नहीं, नहीं, यह पाप नहीं है...पाप है ! बुरा है, इस लिए पाप है। यह नहीं हो सकता, इस लिए पाप है।...ओह, ओह, क्या करूँ...क्या करूँ ? (एकदम) करती क्या ? जो सड़क करती है। सड़क क्या करती है...सड़क क्या करती है ?...देख नहीं रही हो तुम, उसे न बीते का शोक है और न आने वाले की चिन्ता। वह वर्तमान में रहती है ! ट्रैक्टर, ट्रक, टैंक, मोटर, घोड़ागाड़ी, इन्सान सब बराबर उसकी छाती पर चोट करते चलते हैं। वह सबकी सहती है और राह दिखाती है। वह अपने ऊपर कुछ नहीं रखती। रख ही नहीं सकती। रखे, तो दे क्या ? (कार तेजी से आकर पास रुकती है) अरे, वे तो आ गए ! वे सब...वे अन्दर आ रहे हैं। तो चलूँ, सब-कुछ भूल कर उनका स्वागत करूँ। घर की रानी की तरह उनका स्वागत करूँ। पति की प्रियतमा की तरह पति के मित्र का स्वागत करूँ। हाँ, यही मेरा कर्तव्य है, यही मेरा वर्तमान है। मैं यही करूँगी। (दृढ़ता से) अच्छा विदा, अलविदा, बहन ! अलविदा, सड़क, अलविदा ! (दृढ़ स्वर फिर मौन)।

फैन्टेसी (भावनाट्य)

एकांकी का अत्यन्त रोमान्तिक रूप। दृष्टि-कोण एकान्त वस्तुगत, स्वच्छन्द! कल्पना मुक्त और परिणाम-रहित अर्थात् जीवन के किसी अमूर्त तथ्य पर आधारित रोमानी चित्रण।

'बादल की मृत्यु' हिन्दी में सर्वसम्मत विशुद्ध फैन्टेसी है।

बादल की मृत्यु

पात्र

संध्या

बादल

वायु

[स्थान—पश्चिम आकाश ।

समय—रात्रि होने में कुछ विलंब है। क्षितिज अरुण-वर्ण है। सूर्य की
त होती हुई किरणें गिरि-शृंगों को चूम रही हैं, जैसे मृत्यु शैय्या पर लेटी
मां अपने वयस्क पुत्र को चूम रही है।

संध्या के साथ एक बड़ा बादल ।]

दल (आगे बढ़कर) क्या जा रही हो संध्या ? देखो न, हमारे सहयोग से तुम्हारा शरीर कितना सुन्दर है। किसी महारानी के रंग-बिरंगे शरीर के समान तुम फैली हुई हो! पुष्पों के रंग और उनके सौकुमार्य से सजी हुई तुम्हारे उर की यह छवि!! न संध्या, न जाओ।

ध्या (मलिन होकर) बादल, यह अपनी प्रशंसा रहने दो। यदि मैं रुक जाऊँ, तो क्या हो ? अस्थिरता ही तो जीवन का सौंदर्य है। एक क्षण में मेरे सौंदर्य की हिलोर और दूसरे क्षण में उसका विनाश! यही संसार का स्वरूप है। दूसरों को भी तो जीवन का अवसर दो। यह रंगमंच किसी एक पात्र के अधिक देर तक ठहरने के लिये

नहीं है। यदि मेरी छवि में ही विश्व के नेत्रों की आकांक्षा...वह देखो, दो तारे! आहा, कैसे चमक रहे हैं!!

बादल चमकने दो। दो शैतान बच्चों की तरह वे समय से पहले ही अपने अपने घर से बाहर आकर खेल रहे हैं। अभी शेष तारों के निकलने में कितनी देर है? देखो, अभी सूर्य की किरणें उस शृंग पर चमक रही हैं। कितनी उज्जवल हैं।

संध्या और वृक्षों के नीचे की वह घनी छाया!

बादल छाया? वह तो किसी पापी के हृदय के समान सदैव नीचे की ओर रहा करती है। दिन में भी तो छाया का अस्तित्व है। सन्ध्या जाओ। देखो, तुम आकाश के छोटे कोने ही में तो हो। रात्रि के लिये सारा आकाश पड़ा हुआ है।

संध्या आकाश के केवल एक कोने में रहने पर भी परमात्मा की सत्ता के समान मैं सारे आकाश में व्याप्त हूं। भोले बादल, स्वतन्त्रता की उपासिका दो रानियाँ एक साथ रहना नहीं जानतीं। यह बात समझ सके हो या नहीं?

बादल महारानी संध्या! रुको, कुछ देर सरिता में अपना मुख देखो। लहरों की लचकती हुई रूप-राशि में यौवन के समान बरस पड़ो! पृथ्वी के अंग में सुनहले अंगराग के समान लगी रहो। परमात्मा की सत्ता के समान कुछ देर क्षितिज-रेखा में सुनहले फूल गूथो। क्यों रानी, परमात्मा की सत्ता किसे कहते हैं?

संध्या (हंसकर) तुम मुझे बातों में नहीं भुला सकते। बादल, देखो, वायु की वह लहर आई।

(वायु का प्रवेश । बादल अलग हट जाता है ।)

ग्रु (संध्या को देखकर) अरे, अभी तक तुम यहीं हो !

या (उदास होकर) कुछ नहीं, बादल को अपने प्रस्थान-समय का अंतिम संदेश दे रही थी ।

ग्रु (शीघ्रता से) संदेश ! अब उसे उन दो तारों का संदेश सुनने दो। वे आकाश में महारानी रात्रि के आने का संदेश सुना चुके हैं–अभी दो क्षण पहले ।

ल (समीप आकर, टेढ़ा होकर गर्व से) सुनाने दो। (वायु का तेजी से प्रस्थान) महारानी संध्या यहीं रहेंगी। अपने शरीर की ओर देखकर) मत जाओ महारानी, मत जाओ ।

(क्षितिज पर पतन)

या (व्याकुल होकर) जाऊंगी, बादल ! यह मोह घातक है। मैं भी तो निर्बल होती जा रही हूं। अब भी तुम्हें रूप की प्यास है।

(प्रस्थान)

[वायु का पुनः प्रवेश और बादल पर प्रहार]

दल (फैलकर कराहते हुए) आह, संध्या ! संध्या...अब मेरा शरीर !!

[धीरे-धीरे बादल काला पड़ जाता है।]

ध्वनि गीति-रूपक

रूपक का वह भेद जिसका प्राण तत्व है भावना और माध्यम है कविता। कार्य की अपेक्षा भाव का महत्व अधिक होने के कारण इसमें संघर्ष भी आन्तरिक अधिक होता है।

प्रस्तुत रूपक ध्वनि-रूपक का सुन्दर उदाहरण है। ध्वनि-रूपक में लम्बी कथा को संक्षिप्त करने के लिए वाचक-वाचिकाओं का प्रयोग होता है।

कर्त्ता

पात्र

वाचक
वाचिका
सुयोधन
कर्ण
शल्य
द्रौपदी
कुन्ती
इन्द्र
कृष्ण
अर्जुन
धर्म

(गम्भीर और करुण संगीत। उस संगीत पर वाचक का स्वर)

वाचक

मानव के दर्प से विक्षुब्ध आज पृथ्वी है
मानव के क्रोध से विकम्पित है आसमान।
मानव की घृणा से दिशाएँ सहमी-सी हैं
मानव की हिंसा में मृत्यु आज मूर्तिमान।

वाचिका

भारत की पुण्य-भूमि बलिवेदी कुरुक्षेत्र
और महाभारत का पुण्य पर्व है महान।
एक ओर कौरव हैं, पांडव हैं एक ओर
और नियति मांग रही मानव से रक्त-दान।

वाचक

हर्ष और विमर्ष से परे योगीश्वर-स्वरूप
कर्म-सा कठोर और गीता-सा शान्तवान।

एक वासुदेव का सहारा है अर्जुन को
एक कृष्ण में ही है कृष्णा की सकल आन।

वाचिका

भीष्म तो पड़े हैं शर-शय्या पर मृतक तुल्य
द्रोण को परम गति कल को हो ही चुकी प्राप्त।
आज है सुयोधन श्रीहत-सा अवलम्बहीन,
उसके निर्भय मन में चिंता-सी गई व्याप्त !

(दृश्य-परिवर्तन। दूर पर प्रातःकालीन धीमा कोलाहल और शंखों का आता हुआ नाद)

सुयोधन

फट रहा है निविड़ यह अंधकार का बादल
है जाग रहा धीरे-धीरे जग-जीवन।
सामने उदधि सा कुरुक्षेत्र फैला है
करना है हमको फिर से उसका मंथन।

(शंख की गम्भीर आवाज)

वह देवदत्त का तुमुल नाद, वह अर्जुन
गांडीव लिये चल पड़ा दर्प में खोया।
शर-शय्या पर हैं पूज्य पितामह लेटे
क्षत्रित्व मान उनकी आँखों में सोया।
आचार्य द्रोण ! वह धर्मराज का पातक
है उन्हें खा गया, ज्यों कि पुरुष को माया।

धिक्कार युधिष्ठिर, धिक है तुमको केशव,
तुम हो अर्जुन के महापाप की छाया।

(निकट से शंख की आवाज)

वह देवदत्त का कर्कश रव उठता है
जैसे श्मशान का सन्नाटा अभिशापित ।
कर रहा अकेला पार्थ मृत्यु-सम क्रीड़ा
लाओ तो मेरी गदा, अभी मैं जीवत।

कर्ण

जीवत है मानी कर्ण अभी जीवत है,
शत शत अर्जुन आ जाएँ मेरे आगे।
निश्चिन्त सुयोधन मेरी धन्वा देखो
ये बाण युगों की हिंसा में अनुरागे।
पौत्रों का मोह पितामह को ले डूबा
आचार्य पुत्र-ममता में निज को भूले ।
देखूं तो मैं छल-कपट आज केशव का
देखूं है किसमें शक्ति कि मुझको छू ले।
मैं कर्ण करूंगा सेना का संचालन
मैं कर्ण चल रहा कुरुक्षेत्र को मथने।
मैं आज विजय का वरण करूंगा निश्चय
यदि साथ दिया मेरा सारथि ने, रथ ने ।
सारथि कृष्ण के रथ के संचालन से
निःशंक, निरापद है बन गया धनंजय ।
यदि शल्य करें स्वीकार सारथी बनना
तब रण में मेरी विजय हो चुकी निश्चय ।

शल्य

तुम क्या जानो क्या निश्चय ! अरे पराजय
रह रह पुकारती है ललाट की रेखा ।
तुम बधिर नियति के शब्द न सुन पाते हो
तुम अन्ध न तुम पढ़ सके भाग्य का लेखा !
स्वीकार मुझे सारथी तुम्हारा बनना
तुम उच्छृंखल, तुम अविवेकी, अभिमानी ।
हे सूतपुत्र तुम अपना धनुष उठाओ,
देखूं कितना अभिमान, कि कितना पानी !

(दृश्य-परिवर्तन ! रथ पर शल्य और कर्ण बैठे कुरुक्षेत्र के मैदान में बढ़ रहे हैं)

कर्ण

यह व्योम—शून्य का यह प्रसार नीला सा
है इसे नापने को बढ़ता रवि का रथ ।
यह समय असीम, अखण्ड और अविभाजित
यह दिखा रही है उसके अंतर को मथ ।
हे शल्य बढ़ाओ अश्व समय थोड़ा है—
सीमित अर्जुन, केशव विराट को देखूं ।
स्वजनों की ममता मोह भरी दुर्बलता
गीता के उस निष्काम-बाट को देखूं ।

शल्य

इतने अधीर क्यों ? तुम सब कुछ देखोगे
मरने के पहले, इतना निश्चय जानो !

है जहां घृणा विद्वेष, क्रोध औ, मत्सर
तुम वहीं मृत्यु की सीमा को पहचानो ।
आश्चर्य मुझे है एक बात पर केवल
तुम दान-दया तुम संयम के अधिकारी ।
बरवस ही तुममें भड़क उठी है कैसे
पाण्डव कुल के प्रति हिंसा की चिनगारी ?

कर्ण

हिंसा मुझमें—इस सूत-पुत्र में हिंसा ?
हिंसा पर है केवल अधिकार तुम्हारा ।
तुम जो क्षत्रिय हो, जो कुलीन, जो शासक
जिसकी श्वासों में बही धर्म की धारा ।
है याद तुम्हें वह दिन कि द्रुपद की कन्या
आभीर कृष्ण की धर्म-बहिन वह कृष्णा ।
बनकर बैठी स्वयम्बरा मण्डप में
मानो रस रूप और योवन की तृष्णा ।
मेरे मानस में थीं उमंग की लहरें
मेरी नस नस में ऊष्ण रक्त संचारित ।
मेरी सांसों में व्यास प्रणय की अविकल
थी रोम रोम में प्रेम भावना अंकित ।
यों मंत्र-मुग्ध सा, सपनों में खोया सा
द्रौपदी वरण की ले मन में अभिलाषा ।
पहुंचा था उस प्रख्यात स्वयम्बर में मैं
चखने जीवन की सबसे बड़ी निराशा !

(दृश्य-परिवर्तन। स्वयम्बर-सभा—नगाड़ों और
तुरही के स्वर)

वाचक

है अधिकार उसे प्रणय का भोग का
रण-विद्या में जो कि कुशल हो, योग्य हो।
द्रुपद-सुता का अधिकारी वह वीर है
लक्ष्य-वेध करने में सफल समर्थ हो।

वाचिका

एक एक कर आए कितने वीर गण
नत मस्तक, असफल होकर वे हट गए।
कठिन लक्ष्य है, एक पार्थ होते यहाँ
इसे वेधकर वर लेते वे द्रौपदी।

कर्ण

क्या केवल अधिकार पार्थ का वीरता!
मैं आया हूँ कर्ण लक्ष्य को वेधने!
मेरी ग्रीवा पर शोभित होंगे अभी
वरमाला के मुर्झाये से फूल ये!

द्रौपदी

कर्ण! रुको, तुम सूतपुत्र क्या कर्ण हो?
मुझको वरने का अधिकार तुम्हें नहीं।

राज-सुता मैं कृष्णा हूं, यह जान लो !
वर्णहीन तुम केवल दर्शक भर रहो !

वाचक

मौन द्रोण आचार्य, सुयोधन मौन है,
मौन सकल नृपवंश, मौन ब्राह्मण सकल !
स्तब्ध स्वयम्बर-सभा, द्रौपदी का कथन
मौन भाव से उन सबको स्वीकार है !

वाचिका

मौन कर्ण, लांछित, अपमानित, हत-प्रभ
उसके नन्दन वन की सकल हरीतिमा।
झुलस गई उस स्वयम्बरा की घृणा के
व्यंग्य वचन के झोंकों के उत्ताप से !

वाचक

उसी समय ब्राह्मण-दल में दोलन हुआ
एक युवक उठ पड़ा धनुष धारण किये।
लक्ष्य वेध करने को वह आगे बढ़ा
और कर्ण ने देखा उसको क्रोध से।

वाचिका

कंधे पर यज्ञोपवीत धारण किये
नेत्रों में अक्षय विश्वास लिये हुए।
उसने वेधा लक्ष्य, द्रौपदी ने पुलक
उसकी ग्रीवा में जयमाला डाल दी।

(दृश्य-परिवर्तन । कुरुक्षेत्र का मैदान । रथ पर शल्य और कर्ण चल रहे हैं ।)

शल्य

वह अर्जुन था, गांडीव लिए वह अर्जुन
वह पांडु-पुत्र वह राजवंश का वाहक ।
हे सूतपुत्र है व्यर्थ तुम्हारी कटुता
तुम स्वयं बन रहे हो अपने ही दाहक !

कर्ण

मैं सूतपुत्र ?—मैं हूं मनुष्य, मैं पावन
मैं निष्कलंक, मैं अकलुष, मैं व्रतधारी ।
मैं जीवित हूं, निज भुजदंडों के बलपर
मैं राजलोभ से बना कभी न भिखारी ।
कृष्णा को निश्चय वरण किया अर्जुन ने
पर बनी पांच पतियों की है भार्या !
मैं सूतपुत्र, मैं हूं अपमानित लांछित
हे शल्य ! बनी है आज द्रौपदी आर्या !
द्रौपदी, कि जिसके व्यंग्य वचन के कारण
रच गया महाभारत का पर्व अनूठा ।
द्रौपदी, कि जिसके हठ की रक्षा करने
बन गया युधिष्ठिर धर्मराज तक झूठा ।
द्रौपदी कि जिसने केश खोल रखे हैं
धोयेगी जिन्हें सुयोधन के शोणित से ।

द्रौपदी जिसे है गर्व पार्थ के बल का
वह उतर सकी है कभी न मेरे चित से !
हे शल्य चुकाना है मुझको ऋण उसका
अर्जुन के ताजे लोहू की अंजलि से।
उस राजवंश की हिंसा की देवी का
अभिषेक मुझे करना है अब नर-बलि से।

शल्य

हे कर्ण उठाओ धनुष ! भीम है आगे
दक्षिण में उसके धर्मराज का रथ है।

(बाणों के चलने का स्वर और फिर विराम)

है असह तुम्हारे इन बाणों की वर्षा
निर्जन उजाड़ सा पड़ा हुआ रण-पथ है।
वह भीम अकेला अपनी गदा संभाले
लो वह भी पीछे हटा—उसे जाने दूँ ?
हट रहा युधिष्ठिर और अधिक दक्षिण को
बोलो, क्या तुमसे त्राण उसे पाने दूँ ?
सहदेव, नकुल, वे वाम पार्श्व से भागे
हे कर्ण ! शीघ्र निज घातक बाण चलाओ।
पहले समाप्त कर लो चारों पांडव को
इस भांति पार्थ को तुम निस्तेज बनाओ !

कर्ण

मंत्रणा तुम्हारी मूल्यवान, सच्ची है
हे शल्य ! तुम्हारा धन्यवाद है शत-शत !

पर वचनबद्ध हूं, मैं न इन्हें मारूंगा
इस भांति न अर्जुन होगा मुझसे श्रीहत !
मैं आज युद्ध की इस पावन वेला में
हूँ प्रकट कर रहा एक सत्य जो मेरे—
मानस में चुभता रहा सदा कण्टक सा
मेरी संज्ञा को जो तुषार सम घेरे।
यह सूतपुत्र है सूर्य-पुत्र वास्तव में
कुन्ती—कुमारिका कुन्ती उसकी माता।
उसकी माता से जन्म लिया है जिसने
वे अर्जुन भीम युधिष्ठिर जिसके भ्राता।
यह सूतपुत्र है नहीं शूद्र, यह—जारज
जारज—समाज का कुष्ठ, और मानवता—
का एक घृणित अभिशाप जिसे वर्जित है
अपनी माता की या कि पिता की ममता।
जारज—जो लम्पट पुरुष, अभद्रा कन्या
की कामुकता का मूर्तिमान पातक है।
जारज—है जिसके स्वजन न जिसका कुल है
जो मानव की मर्यादा का घातक है!
अस्तित्व व्यंग्य बन चुका हाय रे मेरा
मैं मोह मान मर्यादा को आया तज।
माता कुन्ती ने स्वयम् कहा है मुझसे
मैं जारज हूं, हे शल्य, सुनो मैं जारज।

(दृश्य-परिवर्तन। कर्ण पूजा करके उठते हैं। शंख और घण्टे का स्वर। उसके बाद एक समवेत गान होता है)

समवेत गान

वीर और यशस्वी पूजा से है उठा कर्ण
ब्राह्मणगण आओ, तुम दान लो, दान लो।
आओ हे निर्बल, आओ हे अवलम्बहीन
अपने दुःख दैन्य से यहां तुम त्राण लो।
पिता है अनाथ का, सखा वह पीड़ित का
माता का पुत्र और भगिनी का भाई है।
दानी-अभिमानी वह व्रती कर्ण बैठा है
आओ हे जग के जन, आओ तुम दान लो।

कर्ण

कौन अभी तक खड़ी हुई तुम कौन हो
तुम वृद्धा सम्भ्रान्त आवरण के सहित।
शंकित सी, कम्पित शरीर, भय से भरी
मांगो अपना दान अरे क्यों मौन हो?

वाचक

वृद्धा का आवरण हट गया स्वयम् ही
वह विवर्ण मुख, हिम-सा मुर्झाया हुआ।
भरे हुए थे नेत्र और अपलक विमुग्ध
देख रही थी वह तेजस्वी कर्ण को!

कर्ण

अरे राजमाता, समर्थ कुन्ती यहां
सूतपुत्र से लेने आई दान है।

महासमर के पहले ! मांगो देवि तुम
प्रस्तुत है यह कर्ण—आज वह धन्य है।

कुन्ती

महासमर के पहले...यह मां का हृदय
बरबस भर आया, हे दानी कर्ण मैं—
पांच पाण्डवों के प्राणों की भीख ही
मांगूंगी, बस दे दो इतना दान तुम।

कर्ण

दे सकता हूँ दान देवि उस वस्तु का
जो मेरी हो या मुझको अधिकार हो।
किन्तु पाण्डवों के प्राणों पर बस नहीं
ले लो मेरे प्राण, मुझे स्वीकार है।

कुन्ती

हाय कहूं मैं कैसे तुमसे सत्य वह
जो कुरूप है, जो कटु है, जो सत्य है।
आज दांव जब प्राणों के ही लग रहे
कहना होगा मुझे—कर्ण तुम पुत्र मम!
एक बार जब कि मैं कुमारिका थी, तभी
सहसा ही आसक्ति सूर्य के प्रति जगी।
जिन्हें मन्त्र-बल से था आमन्त्रित किया
सुनो कर्ण तुम उन्हीं सूर्य के पुत्र हो।

लोक-लाज से फिर तुमको तजना पड़ा
लज्जित हूं मैं कर्ण तुम्हारे सामने—
पर मैं माता हूं—भ्राता हैं सकल
पाण्डव—जिनके आज बने हो शत्रु तुम ।
क्यों पीले पड़ गये अचानक सहम कर
धीर-वीर-गम्भीर कर्ण तुम कुछ कहो ।
माता आई है भिखारिणी बन यहां
मांग रही वह दान, पुत्र मत चुप रहो ।

कर्ण

माता ! पावन ममता की संज्ञा परम
प्रार्थी हूं तुम व्यंग्य न यों उसका करो ।
मैं हूं एक कलंक मात्र जो त्याज्य है
उसे पुत्र कह कर सम्बोधित मत करो ।
अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर की माता अरे
पुत्रों का हो गया मोह इतना तुम्हें ।
निर्लज्जा सी निज कलंक इस कर्ण को
कातर बन करने आई स्वीकार हो ।
अरे भिक्षुकों की मां भिक्षा मांगने
दौड़ी आई हो तुम अपने पाप से ।
भीम, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव के
प्राणों की मैं भिक्षा देता हूं तुम्हें ।
एक पार्थ—वह पार्थ कि जो है द्रौपदी
की हिंसा का मूर्तिमान प्रतिबिम्ब सा ।
जिसके कारण यह नर-मेध रचा गया
उसे नष्ट करना ही मेरा धर्म है ।

(दृश्य-परिवर्तन। कुरुक्षेत्र का मैदान। शल्य और कर्ण रथ पर चल रहे हैं।)

शल्य

हे कर्ण आज मैं समझ सका हूँ तुमको
यह धूमकेतु सी ज्वलित तुम्हारी कटुता।
स्वीकार करो मेरा शत-शत अभिनन्दन
कितनी महानता भरी तुम्हारी लघुता।
तुम क्षमा करो जो निज तीखे व्यंग्यों से
निस्तेज बनाना चाहा मैंने तुमको।
ले लिया वचन था धर्मराज ने मुझसे
सारथी बनाओ तुम अपना यदि मुझको।
हतप्रभ मैं करता रहूँ निरन्तर तुमको
तुम चलो युद्ध में जब अर्जुन के सम्मुख।
यों जानबूझ अपमान महा योद्धा का
जो किया, इस समय है मुझको उसका दुःख।
यह तेज तुम्हारा बढ़े कि जैसे बढ़ता
मध्याह्न काल का सूर्य गगन के ऊपर।
ले चलता हूँ रथ मैं अर्जुन के आगे
अपनी धन्वा पर सन्धानो अपने शर।

(दूर पर शंखनाद का स्वर। रथ चलने की आवाज।)

शल्य

अति दूर, स्वर्ण के कलश, ध्वजा से मंडित
जो देख रहे हो, वह रथ है अर्जुन का।

पीताम्बर धारी मधुर हास से वेष्टित
है कृष्ण स्वयम् कर रहे निदर्शन उसका।
वह कवच और कुण्डल से शोभित अर्जुन
है देख रहा इस ओर कृष्ण इंगित पर।
आ गया समय वह कर्ण, प्रतीक्षा जिसकी
तुमने की है निज कटुता से जीवन भर!
अमरत्व प्राप्त था तुमको जिसके कारण
है कहां तुम्हारा कवच और वह कुंडल।
क्या छीन ले गया है उसको भी तुमसे
छलना में उस पटु वासुदेव का कौशल!

कर्ण

अमरत्व प्राप्त कर जो कि युद्ध में आये,
वह कब समर्थ? कब वीर? अरे वह कायर!
अवलम्ब मुझे है सदा, धनुष का, शर का
मैं कवच और कुण्डल पर हूँ कब निर्भर!
अमरत्व!—सूर्य ने ममतावश निज सुत को
अपना प्रदान कर दिया कवच औ' कुण्डल।
इस भांति दिया देवत्व उन्होंने मुझको
शंकित से होकर कांप उठे दिक् मण्डल।
डरते थे मुझसे मानव हों या दानव
डरते थे मुझसे दैत्य, असुर औ' किन्नर!
पर इन सबसे भी अधिक भीत था मुझसे
वह देवराज, वह इन्द्र, अरे वह कायर।
मैं कर्ण चक्रवर्ती जो बन सकता था
जो बन सकता था भोगी और विलासी।

वह कामुक लम्पट इन्द्र, उसे चिन्ता थी
मैं धर्मवान क्यों, मैं क्यों बना उदासी !
उसको मानव के धर्म-कर्म से भय है
भयभीत उसे कर देता पूजा-अर्चन !
निष्ठा से औ' प्रत्येक यज्ञ से तप से
चल दल-सा हिल पड़ता उसका इन्द्रासन ।
अमरत्व और देवत्व—अरे वह धिक् है !
हो महापातकी इन्द्र कि जिसका स्वामी ।
छल, कपट, भोग, तृष्णा देवों के गुण हैं
मैं मनुज, सत्य का, संयम का अनुगामी !
वह इन्द्र भिखारी बनकर मेरे सम्मुख
आया था जब अमरत्व मांगने मेरा ।
मैंने कर दी थी उसकी इच्छा पूरी
कब दान-धर्म से मानव ने मुख फेरा ?
वह वज्र की जिस पर गर्व इन्द्र को इतना
मानव दधीचि के अस्थिदान से निर्मित
देवत्व—सड़ा दुर्गन्धयुक्त सरवर है
मानवता तो है निर्झरिणी सी जीवित ।

(दृश्य-परिवर्तन । कर्ण के विश्राम का समय । घण्टों का संगीत ।)

वाचक

आया विश्राम काल कर्ण वीर दानी का
भूखा, अवलम्बहीन—आए वह सामने ।

सबकी इच्छा पूरी करके वह सोएगा
मांग लो उसे तुम आए हो जो मांगने।

वाचिका

सोया है सकल नगर, सोया है ग्राम-प्रान्त
सब हैं सन्तुष्ट, सब भरे हैं, सब पूरे हैं।
किन्तु एक ब्राह्मण चुप बैठे हैं प्रांगण में
उसके रहते व्रत वे कर्ण के अधूरे हैं।

कर्ण

थके और श्रीहीन विप्रवर अब उठो
आया है यह कर्ण तुम्हारे सामने।
लेकर अपना दान हर्ष संतोष से
जाओ तुम निज धाम, रात का समय है।

इन्द्र

दे पाओगे दान प्रतापी कर्ण तुम
जो कुछ मांगू ? इतना निश्चय है तुम्हें ?
अगर वचन दे सको कहूँ निज बात तब
मौन भाव से गृह लौटूंगा अन्यथा।

कर्ण

नहीं दान में कभी कर्ण पीछे रहा
मांगो अपना दान छद्मवेशी अरे।

ब्राह्मण बन आए हो मेरे द्वार पर
तुम्हें मिलेगा दान, वचन मेरा तुम्हें।

इन्द्र

दे दो अपना कवच और कुण्डल मुझे
आज सूर्य का पुत्र अमरता दान दे।
कर्ण रहा है गर्व तुम्हें निज दान का
साहस है इस महादान का क्या तुम्हें ?

कर्ण

भेजा है क्या तुम्हें महाकपटी, छली
वासुदेव ने ? या कि डरे उसे पार्थ ने ?
लो यह कुण्डल-कवच किन्तु सच-सच कहो
छद्मवेश धारी ब्राह्मण तुम कौन हो ?

इन्द्र

मुझे न भेजा कृष्ण न अर्जुन ने मुझे
मैं हूँ इन्द्र स्वयम् मैं ही भयभीत हूँ।
कुरुक्षेत्र का विजयी तेजस्वी अमर
इन्द्रासन पर कर लेगा अधिकार निज।

कर्ण

इन्द्रासन ! वे पतित अप्सरायें जहां
करती हैं सन्तुष्ट पातकी इन्द्र को।
घृणित कलंकित विषय-भोग से नित्य ही
राग-रंग में खोया रहता जो सदा !

किन्नर औ' गन्धर्व नृत्य संगीत में
जीवन की पावनता, संयम को जहां—
कर देते हैं नष्ट और सुरगण जहां
करते बन निर्लज्ज सुरा का पान हैं!
मोह न उस इन्द्रासन का मुझको कभी
देवराज! देवत्व तुम्हारा घृणित है।
लो अपना अमरत्व, न मुझको चाहिए,
मैं मानव हूं शिवि, दधीचि के वंश का।

(दृश्य-परिवर्तन, कुरुक्षेत्र का मैदान। शल्य और कर्ण रथ पर चल रहे हैं।)

शल्य

है मुझे गर्व बन कर सारथी तुम्हारा
हे कर्ण तुम्हारी जय हो, जय हो!
तुम महाकाल से भी लोहा ले सकते
तुम स्वयम् धर्म सम, पावन हो, निर्भय हो!
तुम तेजयुक्त, तुम धीर तपस्वी, अच्युत
है मुझे देखना वासुदेव का कौशल।
सामने बढ़ा आता है वह रथ देखो
रह रहकर अर्जुन हो उठता चंचल।
उसका आया यह प्रथम वाण जो मेरे
रथ-संचालन में निकल गया दक्षिण को।
तानो तुम अपना धनुष, वाण संधानो
देखे तो अर्जुन आज तनिक दुर्दिन को।

वाचक

तेज कर्ण में, अर्जुन में है लाघव,
धीरता शल्य में और कृष्ण में कौशल।
सुर असुर देखने को यह रण घिर आए
मच गई सकल इस कुरुक्षेत्र में हलचल।

वाचिका

चल रहे बाण हैं तीक्ष्ण लक्ष्य के साधे
ज्यों पंख लगाकर मृत्यु कर रही नर्तन।
दो वीर भिड़े हैं अडिग और अपराजित
ज्यों महाकाल से लड़ता हो जगजीवन।

वाचक

रुक गया पवन कुछ सहमा सा
रुक गया सूर्य का रथ भी चलते-चलते।
आकाश झुक गया थोड़ा सा पृथ्वी पर
हैं दिक्‌मण्डल मानो अंगार उगलते।

वाचिका

अब संध्या घिरने लगी पार्थ विचलित है
उसके बाणों में आने लगी थकावट,
उसके आगे है कर्ण तेज से मण्डित
अर्जुन के मन में ली संशय ने करवट।

वाचक

देखी केशव ने अर्जुन की अस्थिरता
देखी केशव ने वही कर्ण की क्षमता।
आच्छन्न हो गया फिर उनका मुखमण्डल
बोले धीमे से स्वर में भर कर दृढ़ता।

कृष्ण

तुम सावधान हे पार्थ! परीक्षा है अब
निस्तेज कर्ण को शल्य नहीं कर पाये।
वह आज यहां बन रहा मृत्यु का स्वामी
प्रस्वेद युक्त तुम थके हुए मुर्झाये।
अब तक मैं करता था रथ का संचालन
अब करता हूं मैं रण का भी संचालन।
इस कुरुक्षेत्र के उत्तर में फैला है
भू-भाग जो कि है अति बीहड़ अति निर्जन।
है नहीं शल्य को ज्ञान कि वह वास्तव में
है कपट भरा छोटा सा घातक दलदल।
उस ओर लिये चलता हूं मैं रथ उसका
देखते रहो तुम वासुदेव का कौशल।

वाचिका

धंस गया अचानक कपट भरे दलदल में
वह वाम चक्र उस वीर कर्ण के रथ का।
कुछ आशंका से कांप उठा निर्भय मन
अवरोध देखकर यों अपने रण-पथ का!

कितने प्रयत्न कर थका शल्य, पर हारा
हैं मौन विवश से चपल अश्व बलशाली।
विक्षुब्ध और हतप्रभ-सा होकर उसने
लज्जा से अपनी भीगी दृष्टि झुका ली।

वाचक

है एक विवशता छाई उसके मुख पर
उसके ललाट पर है रो रही पराजय,
हैं कांप रही वे उसकी चपल उंगलियां
वह बोल उठा वाणी में भर कर संशय।

शल्य

हे कर्ण! तुम्हें विश्वास दिलाता हूं मैं
मैं रहा धर्म पर दृढ़ जैसे ध्रुवतारा।
स्वीकार किन्तु मुझको करना पड़ता है
मैं छली कृष्ण से हूं कौशल में हारा।
मैं नहीं बढ़ा पाऊँगा अब रथ आगे
फंस गया चक्र है उसका इस दलदल में।
ये अश्व चपल कितने प्रयत्न कर हारे
आगे हो कोई इनसे बढ़कर बल में।

कर्ण

निश्चिन्त रहो, इन भुजदण्डों में बल है
यह रथ क्या, ब्रह्माण्ड उठा सकता हूं।
पथ रोक नहीं सकते हैं मेरा केशव
मैं कर्ण युद्ध-यात्रा में कब थकता हूं?

वाचक

रख दिया धनुष, रख दिया बाण तब उसने
वह उतर पड़ा निज रथ का चक्र उठाने।
वह झुका, धुरा लेकर अपने कंधों पर
वह उठा संभल कर निज शरीर को ताने।

वाचिका

कुछ चकित मुग्ध-सा देख रहा है अर्जुन
उस निपट असंभव को यों बनता संभव।
झकझोर दिया उस समय किसी ने उसको
गंभीर भाव से बोल रहे हैं केशव।

कृष्ण

तुम संधानो निज बाण अरे हे अर्जुन!
इस समय अगर तुम यहां तनिक भी चूके।
तो निश्चय है बनना कंकाल तुम्हारा
इस कुरुक्षेत्र के युद्ध-स्थल की भू के।

अर्जुन

कैसे मारूँ वह तो निरस्त्र है केशव
होगा अधर्म यों उस पर बाण चलाना।
उस पर—जिसने की सदा धर्म की रक्षा
जिसने जाना है हरदम टेक निभाना।

कृष्ण

है वह निरस्त्र जो आत्मसमर्पण कर दे
है वह निरस्त्र जो पागल हो मूर्छित।
पर जो असावधानी करता हो रण में
वह निश्चय होगा यहां मृत्यु में कुंठित।
है क्या अधर्म, या धर्म कि इसका निर्णय
गीता रचने वाले केशव पर छोड़ो।
है लिखी कर्ण की मृत्यु वीर अर्जुन से
कर्तव्य मार्ग से मत अपना मुख मोड़ो।

वाचक

गांडीव तान कर महाबली अर्जुन ने
यों एक एक कर सात बाण संचारे।
मस्तक पर पहिला और दूसरा ग्रीवा
तीसरा वक्ष पर विवश कर्ण ने धारे।
दो बाण बिंधे उसके दोनों हाथों पर
दो बाणों से जड़ गये चरण वे भू पर।
पड़ गईं दिशाएं मृत्यु भार से धुंधली
कुछ काला सा पड़ गया सहम कर अंबर।

वाचिका

उतरा तब रथ से शल्य क्रोध में पागल
उस सुप्त कर्ण के पद पर रख कर मस्तक।
ले लिया धनुष उसने अपने हाथों में
जल उठा कि उसके नयनों में था पावक।

शल्य

हे वासुदेव तुम अपना चक्र उठाओ
तुम धर्मवान हो नहीं, अरे तुम पापी।
कितना महान, कितना पवित्र था वह नर
है तुम्हें ज्ञात, था कितना वीर प्रतापी !
प्रेरित अधर्म पर करके तुम अर्जुन को
उस महापुरुष की हत्या के हो भागी।
जो देवों से था पूज्य और पावन था
जो था दानी, जो था सम्पूर्ण विरागी।

कृष्ण

हे शल्य शांत हो! अनुचित क्रोध तुम्हारा
था अति महान वह कर्ण, ज्ञात है इतना।
वह था अजेय, वह तेजस्वी था रवि-सा
पर तुम्हें विदित है उसे दर्प था कितना।
वह कब विनयी बन सका और कब कोमल
वह अहंमात्र का था उद्दाम पुजारी।
उसमें कब ममता, दया या कि करुणा थी
केवल विनाश का ही था वह अधिकारी।
अन्याय हुआ था उस पर मैंने माना
था नहीं व्यक्ति, दोषी समाज था सारा।
पर ले अपने मन में वैयक्तिक कटुता
वह अभिमानी था अपने ही से हारा।
प्रत्येक रोम में लिए हुए प्रतिहिंसा
अस्तित्व घृणा का वह विकराल भयंकर।

कल्याण विश्व का था उसके मरने में
वह जन-जीवन में था समर्थ प्रलयंकर।
उस दानवीर के दुःखद निधन का मुझको
है दुख महान! पर मेरी निरद विवशता!
यह धरा न उसका भार वहन कर पाती
यह गगन न उसका तेज सहन कर सकता।
वह धर्म—विप्र का छद्म वेश कर धारण
आया है लेने अंतिम कठिन परीक्षा।
तुम हट आओ कुछ इधर और फिर करना
उसकी महानता की वास्तविक समीक्षा।

वाचक

दीपक की लौ जाज्वल्यमान हो जाती
है जिस प्रकार बुझने के पहले कुछ पल।
चेतना संचारित हुई कर्ण में अंतिम
उस। खोले निज नयन शांत औ' निश्चल।

कर्ण

घिरता आता अंधकार है व्योम में
घिरता आता अंधकार है मृत्यु का,
वेला आई है अंतिम विश्राम की
अरे विप्र! दुख से कातर तुम कौन हो?

धर्म

आया था मैं हे दानी, हे संयमी!
करने को तुमसे कुछ धन की याचना।

निज कन्या का व्याह रचाने के लिए
पर मेरा दुर्भाग्य कि तुम असमर्थ हो।

कर्ण

जीवन की इस अंतिम वेला में मुझे
यह भी सुनना पड़ा कि मैं असमर्थ हूं।
नहीं, विप्र मैं दान तुम्हें दूंगा अभी
ले लो मेरे दांत स्वर्ण के तोड़ कर।

धर्म

क्षमा करो हे कर्ण! न मैं कर सकूँगा
अति जघन्य यह कर्म तुम्हें सद्गति मिले—
और तुम्हारा यश जग में विख्यात हो
देता हूँ आशीर्वाद तुमको यही।

कर्ण

ठहरो विप्र! मुझे दे दो मेरा धनुष
देख रहे! मैं उठने में असमर्थ हूँ।
धन्यवाद, तुम पल भर ठहरो, मैं अभी
इन दांतों का स्वर्ण तोड़ कर दे रहा।
(टंकार की आवाज—कर्ण दांत तोड़ता है।)

कर्ण

लो तुम अंतिम दान विप्र इस कर्ण का
जो चिर निद्रा लेने को आतुर पड़ा।
अस्ताचल के सूर्य तुम्हारे पुत्र का
यह अंतिम प्रणाम तुमको स्वीकार हो।

ीति-नाट्य

गीति-ध्वनि-रुपक और गीति-नाट्य में केवल इतना अन्तर है कि गीति-नाट्य रंगमंच पर भी खेला जा सकता है। शेष बातें ्दोनों में समान होती हैं।

राम

पात्र

मंदिरा
सोम
धन्वन्तरि
सुमंत्र
दौवारिक
राम

[पृष्ठ भूमि में सांध्य कालीन मंगल वाद्य ध्वनि हो रही है। "सप्तद्वीप नवलोक चराचर साव का घर हो, राम राज्य का चित्र धरापर अजर अमर हो"]

[रंगमंच पर अयोध्या में एक साधारण विप्र के घर का दृश्य। भीतरी कोष्ठ जिसमें मद्धिम दीपक जल रहा है। मृग छाल पर एक रुग्ण बालक कराह रहा है। निकट ही द्विज पत्नी मंदिरा बैठी है।]

मंदिरा

हे जगदीश्वर
रक्षा करो परम परमेश्वर
यह कैसा अनर्थ हो रहा राम राज्य में
पाप हीन सुख के समाज में,
पुत्र हुआ रोग से पीड़ित
माता और पिता के सम्मुख
या हम सपना देख रहे हैं।
दुख का काला श्वान
कि जिसमें
पीड़ित हो संतान राम की

प्रजा राम की
रोग, और फिर राम राज्य में !
पुत्र-कष्ट, सुख के समाज में !
किन्तु नहीं, यह स्वप्न नहीं है.
राम राज्य में संभव दुख का स्वप्न नहीं है.
तो फिर-हाय
करूं क्या मैं फिर
हे मेरे जगदीश्वर
यह अनहोना पाप कौन सा टूटा हम पर

[ऊँची कराह ध्वनि, ठहर कर]

आंखें खोलो पुत्र
नयन के मेरे तारे
नयन उठाओ
नहीं, नहीं तुम नहीं नैन में
पुत्र, वत्स, ओ लाल

[निश्वास, मन्द रुदन]

स्वामी, कहां गये तुम स्वामी,
स्वामी !!!
हां सुधि आई
स्वामी तो हैं गए धन्वन्तरि को लेने
वैद्यराज-यह भी अनर्थ है
रोग, वैद्य, औषधि
कैसी सुख के समाज में

[तीव्र कराह, श्वासों का द्रुत स्पंदन]

परम शक्ति
मेरे परमेश्वर
महाशक्ति दो मेरा लाल चेत में आए
ज्योति न घर की बुझने पाए।

[द्वार खटकता है। सोम का प्रवेश]

ओह, स्वामी तुम
तुम आ गए
कहां है वैद्यराज
सिद्ध धन्वन्तरि !
देखो प्राणेश्वर
है कैसी दशा पुत्र की
यह अचेत है
जैसे मेरे प्राणों को ही सर्प डस रहा।

सोम

(निश्वास भर कर)

धैर्य, मंदिरा, धैर्य रखो
धन्वन्तरि अभी आ रहे हैं;
जब तक हैं राम हमारे रक्षक प्रतिपालक
जब तक उनकी मंगल छाया फैली ऊपर
है राम नाम आधार
कभी कोई अनर्थ नहीं हो सकता
कोई विपत्ति न आ सकती
संकट की काली कोर
न घिर सकती, जीवन के दीपक पर !

मंदिरा

मुझ को भी है विश्वास अटल
बस इसलिये तो और अधिक
है दुख मन में
अचरज मन में
यह अनहोना क्या आज हो रहा जीवन में,
यह पाप कौन
आघात कर रहा इस विश्वास हिमालय पर
इस राम राज्य के महा सत्य उदयाचल पर
इस महा सत्य की मर्यादा
यह आज टूटती है कैसे
जो है अमोघ जो है अभंग ।
बस इसलिए तो पुत्र कष्ट
है जला रहा मेरा तन मन
विश्वास अमर;
प्रिय बतलाओ
कैसे यह गोदी का मोती फिर चमक उठे
इसकी पीड़ा हो दूर
कि जो क्षण २ बढ़ती ही जाती है।

सोम

हे राम, हृदय मेरा
क्यों आज हो रहा है विचलित,
पर्वत जैसे भूकंपित हो
सहसा फटने को करता है ।

पर नहीं, जहां पर राम रहें
संकट का नाम न हो सकता,
मैं कहता हूं मंदिरा प्रिये,
यह क्षणिक रोग की छाया है;
है कष्ट पुत्र को क्षण भर का
यह क्षणिक पाप की माया है
जो राम नाम की औषधि से मिट जायेगी !

मंदिरा

प्रिय मेरा धीरज टूट रहा
साहस सब मेरा छूट रहा
मैं देख नहीं सकती
सुत की व्याकुल सांसें
उठती कराह
मेरा मन निर्बल होता है
विश्वास छूटता जाता है,
प्रिय बतलाओ
कब तक आयेंगे वैद्यराज !

सोम

मत घबराओ अंगिरा
अभी आते ही होंगे वैद्यराज,
यह अपने किसी कर्म का ही
विषफल है,
जो क्षणिक रोग बन आया है

यह अग्नि परीक्षा है अपनी
इसमें मत विचलित हो देवी।

मंदिरा

तुम कहते हो विचलित मत हो,
तुम कहते अग्नि परीक्षा है,
तुम कहते अपने कर्मों का विपफल है,
यह संभव ही है नहीं नाथ;
हम वेद-विहित पथ पर संयत
हैं रहे सदा ही जीवन भर,
जिस पुण्य-पंथ पर धर्म निष्ठ
यह सारा युग चल रहा सतत,
फिर किन कर्मों का फल यह है।
तुम कहते हो मैं विचलित हूँ
मैं व्याकुल हूँ
पर मैं तो केवल इतना ही कह सकती हूँ
मैं माता हूं। (कराहती है, साथ ही द्वार खटकता है।)

सोम

(साँस लेकर)
और मैं पिता
मंदिरा पिता
महा पीड़ा रखकर भी वज्र हृदय;
लो धन्वन्तरि आ गए
नमन है गुरुवर !

(धन्वन्तरि का प्रवेश)

धन्वन्तरि

आयुष्मान !

मंदिरा

देव प्रणाम !

धन्वन्तरि

सौभाग्यवती भव

मंदिरा

रोको यह महा अनर्थ देव
मेरा है लाल अचेत
अपने औषध अमृत से
इसको शीघ्र चेत में लादो
जिससे यह फिर किलके
मुसकाए गोदी में
तन मन की पीड़ा मिट जाए !
यह अनर्थ क्या हुआ बताओ
क्या इसको हो गया
गुरुवर !

धन्वन्तरि

बेटी, मैं भी विस्मित हूँ
अत्यन्त चकित हूँ
रामराज्य में रोग—कल्पना थक जाती है
यह संभव ही नहीं

सुना है जब से मैंने
बुद्धि चेतना पथराई है
देखो बेटी, तुम दोनों में
कभी भूल में
देव—पितर से
विप्र—अतिथि से
भूल चूक तो नहीं हो गई।

मंदिरा

नहीं नहीं गुरुवर
हमसे न स्वप्न में भूल हुई।

धनवन्तरि

तो फिर...(ठहरकर)
इस अनर्थ का अर्थ...
अस्तु,
देखने दो बालक को
कौन व्याधि है, क्या है पीड़ा—
[क्षणिक मौन, बालक की परिक्षा करते हैं]
हैं, यह क्या,
सोम
मंदिरा

सोम-मंदिरा

(एक साथ) देव !
क्या हुआ देव ?

धन्वन्तरि

कुछ नहीं मन्दिरा,
बेटी तुम अत्यन्त शीघ्र जाकर थाली में
तुलसीदल गंगाजल लेकर आओ
औषधि की मात्रा देने को
क्षण भर भी देर न करना।

सोम

गुरुवर क्या है
आप चौंक क्यों उठे ?
नयन चिन्ता में डूबे
अब कैसा है लाल ?

धन्वन्तरि

(गम्भीर औदास्य से)
कुछ नहीं सोम
दीपक की लौ...
हां, मन्दिरा !
बेटी, शीघ्र ही जल लाओ

[मंदिरा जाती है]

मंदिरा

(क्षण भर में लौट कर) देव [सहसा ठोकर लगकर थाली गिर जातीहै]
हे राम, यह क्या हुआ !

धन्वन्तरि

सोम, मन्दिरा
महा अमङ्गल

दो ही क्षण की देर हो गई
और...

सोम-मंदिरा

(घोर चिन्ता से) और !!

धन्वन्तरि

और दीप की ज्योति बुझ गई !

(करुण पृष्ठ संगीत)

सोम

(अश्रुसिक्त स्वर से)
महा अमङ्गल
वज्रपात है गुरुवर
जाने किस पातक का फल है
जो हमने है किया
कि जिससे त्रेता की मर्यादा टूटी।

मंदिरा

[रुदन]

यह नहीं हो सकता,
यह नहीं हो सकता,
कभी नहीं हो सकता।

सोम

जो हो सकता था नहीं मंदिरा
वही आज हो गया।

मंदिरा

नहीं हुआ !!
नहीं हो सकता !!

इसे 'नहीं' होना पड़ेगा !!!
यदि मेरे सतीत्व में थोड़ा सा भी बल है
मेरे धर्म सिंधु में गंगाजल सा जल है,
तो यह कभी नहीं हो सकता
रामराज्य पर यह कलंक का काजल
कभी नहीं लग सकता,
गुरुवर ! यह क्या हुआ ?

धन्वन्तरि

पुत्री धीरज धरो
यह वज्रपात है नहीं तुम्हीं पर
यह है सारे रामराज्य पर !

सोम

धैर्य रखो मंदिरा ।

मंदिरा

नहीं देव,
हे नाथ अब नहीं
अब तो मैं इसको लेकर जाऊँगी
अपने इस निर्बोध पुष्प को
विद्युत झुलसे हुए फूल को
उनके चरणों पर चढ़ाऊंगी !

(शव को लेकर शीघ्रता से जाती है)

दृश्य दूसरा

(महामंत्री सुमंत्र का भवन। मंदिरा मृत पुत्र को लिए रुदन कर रही है। सुमंत्र गम्भीर है। मंदिरा रोती हुई बोल रही है।)

मंदिरा

महा सचिव
हे परम लोक पालक सुमंत्रवर !
मेरी व्यथा जानकर भी अब
यों निराश मत करो,
बताओ कैसे संभव हुआ असंभव
यह अनर्थ इस पुण्य काल में
इकलौता यह पुष्प
अल्पकाल में टूटा ।

सुमंत्र

पुत्री मन्दिरा !
मुझको संभव नहीं बताना
जन्म मरण का भेद अनोखा,
यह तो ईश्वर की माया है
जन्म मरण जिसके घेरे में बंधे हुए हैं ।
अपने २ कर्मों का फल सभी भोगते
कर्मों के अनुसार जीव जन्म लेता
आयु भोगता
और कर्मानुसार मृत्यु का फल पाता है ।
किन्तु आत्मा है अविनश्वर,
यह अनित्य है,
इसी लिए वह एक देह का वस्त्र त्यागकर
नित नित नये रूप धारती है,
देह भोगती कर्मों का फल ।

इसी लिए फिर फिर बनती
फिर फिर मिटती है ।
तब फिर कैसा मोह देह का
मिट्टी के नश्वर पुतले का
बनते-मिटते इस शरीर का।
करो शोक का त्याग मंदिरे।
रामनाम में दुःख डुबा दो
राम नाम से संकट सारे मिट जायेंगे !

मंदिरा

रामनाम से संकट पास नहीं जब आते
दुख मिट जाते
तो फिर हम पर
वज्रपात क्यों हुआ मन्त्रीवर ?

सुमंत्र

तुम अपने में खोजो देखो,
अपने जिन कर्मों का फल तुमने पाया है।

मंदिरा

यह असत्य है;
कर्म हमारे गंगधार से
हैं पुनीत,
सब वेद, निगम सम्मत हैं
उज्जवल हैं वे सत्य ज्योति से
परम शुद्ध प्रसून सरीखे
त्रेता युग के अरुणोदय से

यश से धवल, धर्म से विधिवत
राम राज्य की आत्मा जैसे ।

सुमंत्र

और तुम्हारे पति के ?

मंदिरा

पति-पत्नी तो एक प्राण के दो स्वरूप हैं
स्नेह-ग्रंथि संतान
इन्हीं दो पत्तों में की खिली कली है
वह जो आज छिनी है हम से ।
और मन्त्रीवर,
मैंने मन, वच्च तथा कर्म से
देवी अनुसूया का ही है नेम निभाया
उनका ही व्रत रत्न उठाया ।

सुमंत्र

तो फिर संभव है यह
पूर्व कर्म का फल हो ।

मंदिरा

पूर्व कर्म यदि होते
तो फल हमको मिलता
यह नश्वर शरीर भोगता
प्रतिफल उसका;
किंतु यहां तो हुआ अमंगल
महा अशुभ यह पातक दूषण

अल्प मृत्यु संतान मरे आंखों के संमुख
माता और पिता के कर्मों का फल
क्यों मिले पुत्र को ?
यह तो भीषण अनाचार है
राम राज्य के सुखद स्वर्ग में
पूर्व कर्म का नाश जहां पर हो जाता है
फिर कैसा फल और विफल है।
यह है केवल निरीवंचना ।
हे सुमन्त्रवर।

सुमंत्र

तुम कर्मों के फल को
जीवन और मरण के चिर रहस्य को
मत प्रवंचना कहो मन्दिरा।
बुद्धि तुम्हारी मोह विवश हो
भ्रमित—चकित है
अनाचार कह कर तुम करती अनाचार हो,
जहां राम हों
अनाचार की वहां कल्पना सदा असंभव।
खोलो अपने नयन मन्दिरे
देखो महासत्य की जलती ज्योति चिरंतन।

मन्दिरा

उसी ज्योति के नीचे तो यह घिरा अंधेरा
इस अनर्थ का
जलती है वह ज्योति चिरंतन महा सत्य की
किन्तु साथ मेरे जीवन का

आज पड़ा है मिट्टी बनकर
इस सूनी गोदी में।
मेरे इस अबोध बच्चे का
निरपराध फूल सा यह तन
गंगाजल की बूंद सरीखा
इसका जीवन
झुलस गया है रोग ज्वाल से।
तुम हो लोकपाल, जग रक्षक
तुम अपना कर्तव्य निभाओ
महा यत्न से इस अनर्थ को
व्यर्थ बनाओ।

सुमंत्र

यों प्रलाप मत करो मंदिरा
घोर पाप की महा आग से
जान बूझ कर तुम मत खेलो।
जन्म मरण हैं नहीं हमारे
वश की बातें।
मैं निज कर्तव्यों को भी हूँ
खूब जानता
राम पंथ के आदर्शों को।
अपने मन की बात बताओ
क्या सेवा मैं करूँ तुम्हारी!

मन्दिरा

इस अनर्थ को व्यर्थ बनाओ
महा मन्त्रिवर!

सुमंत्र

एक वही है बात
तुम्हारी मन-वाणी में
मैंने माना यह अनर्थ है
राम राज्य में,
पर इसका कारण तुम मुझको बतलाओ ।
है किसका अनाचार
किसका यह महापाप फल
कल्प वृक्ष में लगा अचानक
मैं उस अनाचार का करने अंत
तुरंत ही यत्न करूँगा
प्राणों की संपूर्ण शक्ति से ।
जिससे फिर इस मंगलमय धरती के ऊपर
दुख की रेख न लगने पाए !

मन्दिरा

कारण तो तुमको ही बतलाना होगा
कारण का है दायित्व तुम्हीं पर ।

सुमंत्र

हम पर ?
हम पर है दायित्व अंगिरा ?

मन्दिरा

हां, तुम पर
उस अनर्थ का सारा बोझ तुम्हारे ऊपर

रवि से उज्जवल
राम राज्य पर
तुम जिसके हो प्रहरी, रक्षक ।
राम राज्य को देना होगा
इस महान पाप का उत्तर ।

सुमंत्र

शिव शिव
शांतं पापं शांतं पापं
पुत्री, राम राज्य पर ऐसा लांछन !
क्षमा करो हे परम शक्तियो !
मायाग्रस्त मन्दिरा को
ये हतचेतन हो गई आज
अपने अनहोने पुत्र शोक से !

(ठहरकर)

बेटी, तनिक विचार करो तो
एक जरा से लघु लांछन से
पृथ्वी पहले डोल उठी थी
हिला शेष का सिंहासन था,
जब निर्दोष देवि सीता को
मर्यादा पुरुषोत्तम ने
बनवास दिया था,
आँखों के आंसू पीकर
हिम-वज्र हृदय से,
तब से अब तक

वे सागेत महल सूने हैं ।
और आज फिर
इतना भारी लांछन तुम लेकर आई हो
क्या अब महाप्रलय होगी
क्या महाप्रलय को आमंत्रण देने आई हो ।

मंदिरा

महा मन्त्रिवर,
यह संताप प्रलय की ही सीमाएं छूता
यदि यह प्रलय नहीं है,
फिर महा प्रलय की कठिन भूमिका
तो अवश्य है,
जैसे प्रलयकाल के पहिले
आनेवाली काली आँधी ।
किन्तु मन्त्रिवर
मैं आवाहन नहीं करूँगी महाप्रलय का
तांडव नहीं जगाऊँगी मैं
क्योंकि अहित होगा उससे सारी जगती का
दुख की महापीर में धरती डूब जायगी ।
इसीलिए मैं सर्वलोकहित
आ पहुंची हूं द्वार आपके
लिए गोद में मुरझाई यह देह
पुत्र की
जो अबतक है गरम रही,
जिसकी गरमाई से अब तक

मेरा तन-मन जला जा रहा।
अब तो केवल दो बातें हैं
इधर-या-उधर—

सुमंत्र

जल्दी कहो मन्दिरा
वे दोनों उपाय
जो तुमने सोचे इस अनर्थ के
समाधान को
मैं प्रस्तुत हूँ।

मंदिरा

तो—सुनो मन्त्रिवर,
या तो मेरे बालक की निर्जीव देह में
जीवन डालो
इसे जिलाओ...

सुमंत्र

हे ईश्वर!
मंदिरा !!

मंदिरा

(धारा प्रवाह, बिना रुके)

...और नहीं तो
मैं फिर अपने पतिव्रत्य की
महाशक्ति की अग्नि जगाकर
होजाऊंगी भस्म सती सी।

सुमंत्र

नहीं मन्दिरा
नहीं, महापातक हो गया यह
आत्मघात का पाप चढ़ाओगी तुम सिर पर।

मंदिरा

नहीं मन्त्रिवर
उसकी छाप लगेगी सारे राज्य पर।

सुमंत्र

नहीं मन्दिरा,
कभी न यह मैं होने दूंगा
रामराज्य पर यह दोहरा पातक
मैं कभी न लगने दूंगा
प्राणों का भी मूल्य चुकाकर
रामराज्य का यह आदर्श हिमालय
कभी न हिल पायेगा।
बेटी, कुछ तो सोचो
मुझको है विश्वास कि तुम भी
कभी नहीं लगने दोगी
यह पाप-कालिमा
प्राणों से प्रिय राम-नाम पर।

मंदिरा

तो फिर
इस बालक को जीवित करो
मन्त्रिवर।

सुमंत्र

पुत्री, यदि मैं जीवन ही दे सकता
तो ईश्वर हो जाता
जन्म मरण तो है ईश्वर के अधीन
और सब निर्बल हैं
मेरी तो कुछ भी शक्ति नहीं
तुम ईश्वर का ही ध्यान करो
वह ही देगा
सुख शांति
दान जीवन का।

मंदिरा

अस्तु
मेरा तो ईश्वर है बस केवल राम
उसी ईश्वर को मैंने जाना है।
फिर यही सही
मैं शरण राम की जाऊंगी
उनकी ही अलख जगाऊंगी !!

(मंदिरा का गमन)

दृश्य तीन

[साकेत भवनों से मंगल वाद्य-ध्वनि निकटतर होती है। नेपथ्य में आर्तनाद।]

मंदिरा

(रुदन स्वर से)

राम, राम !
हे राम

राम
हे राम !!

[राजभवन, वीणाकार वीणा बजा रहा है, राम सुन रहे हैं। रुदन ध्वनि सुनकर चौंक कर उठते हैं।]

मंदिरा

(रुदन स्वर से)

राम, राम
हे राम !
राम—हे राम !!

राम

हैं, यह कैसा आर्तनाद !

(ठहरकर)

वीणाकार, संगीत रोक दो।

(संगीत सहसा बन्द कर दिया जाता है)

रुदन निकटतर।
किसका है यह करुण कंठ
यह रुदन असम्भव
महाश्चर्य !
कि मेरे रहते प्रजा दुखी हो !

(दौवारिक आता है)

प्रिय दौवारिक,

कहो कौन हमको पुकारता
इतने विह्वल, कंपित स्वर से,
किसे कष्ट है
क्या रावण का रक्त बीज फिर से उगा है।

दौवारिक

नहीं देव,
साकेत द्वार पर एक त्रस्त द्विजा पत्नि
पीड़ित जो निज पुत्र

(सहसा रुक जाता है)

कैसे कहूं राम
मेरी वाणि पथराती
बुद्धि न देती साथ
भूतो न भविष्यति बात हुई है
शब्द थके हैं।

(मंदिरा का प्रवेश)

राम

देवि, राम का लो प्रणाम
क्या-आज्ञा है सेवक को
शीघ्र बताओ कारण दुख का ॥
ये त्रैलोक्य डुबाने वाले अश्रु तुम्हारे
हृदय हमारा बेंध रहे हैं,
देवि, तुम्हारे जीवन के सुखमय आंगन में
कष्ट कौन सा
बनकर आया नया दशानन।

मंदिरा

महा अनर्थ राम !
हुई है मृत्यु पुत्र की
अनहोना यह अनाचार
लो देखो अपने रामराज्य में
लो देखो यह गरम-देह का
फूल पुत्र का
मुरझाया जो इसी गोद में।
तुम्हीं राम हो
ईश्वर कहलाने वाले
तुम जग के रक्षक
अपनी प्रजा पालने वाले !
तो फिर कैसे वज्रपात यह हुआ
तुम्हारी ही छाया में
एक तुम्हारे निर-अपराध
प्रजा के जन पर। बोलो।

राम

(साँस भरकर)

कष्ट तुम्हारा देवि दे रहा
हमको कोटि नरक की पीड़ा
यह दुख तुम पर नहीं
किन्तु मेरे ऊपर है।
सत्य मानना देवि,
कष्ट का बिंदु प्रजा का
मुझको बन जाता है महासिन्धु पीड़ा का

सीता के परित्याग कष्ट से अधिक भयानक।
देवि शांत हो
मैं भागी हो चुका तुम्हारे महाशोक का

मंदिरा

किन्तु शांत मैं हो न सकूंगी
राजा के रहते यदि प्रजा दुखी हो जाए
तो फिर शांति कहां रह सकती?
बतलाओ फिर राम
अनर्थ हुआ यह कैसे
इस अबोध बालक का
क्या अपराध, दोष था?

राम

देवि,
दोष किसी का नहीं
दोष है केवल मेरा
जबकि राज्य में मेरे
यह संताप हुआ है
इसका उत्तरदायी हूं मैं
शीश चढ़ाऊंगा मैं
जो इसका फल होगा।
आज्ञा दो
मुझको क्या दण्ड दिया जाए
मैं प्रस्तुत हूँ
आज्ञा दो देवि!

मंदिरा

(कम्पित स्वर में)

आज्ञा नहीं राम,
कामना है केवल
कि मेरा पुत्र जी उठे ।

राम

देवि, मंदिरा !

मंदिरा

राम, यही कामना मेरी
प्राण दान दो, मेरा सुत जीवत हो जाए
राम राज्य पर पाप-कालिमा लग न पाए ।

राम

किन्तु देवि
यह कैसे संभव हो सकता है ?

मंदिरा

वैसे ही जैसे
यह संभव हुआ असंभव
राम राज्य में ।
कुछ भी नहीं असंभव है
भगवान राम को ।

राम

अच्छा
जो आज्ञा हो देवि,
आज मैं अपने प्राणों की बलि देकर
जीवन दूंगा ।

मंदिरा

नहीं, नहीं
यह कभी नहीं मैं होने दूंगी ।
महाप्राण की बलि से पहिले
मैं ही अपने प्राण तजूंगी !

राम

(गम्भीर होकर)

शिव-शिव
अब तो देवि
मुझे तुम वचन दे चुकीं
जो अब व्यर्थ नहीं जा सकता !
दौवारिक; गंगाजल लाओ
मैं प्राणों की आहुति देकर
जीवन दूंगा ।

दौवारिक

भगवान !!

मंदिरा

राम !!

राम

लाओ, दो गंगाजल मुझको
प्रथम करूं आचमन

(गंगाजल से आचमन करते हैं)

अपवित्रः पवित्रोवा सर्वावस्तांग गतोपिवः
यः स्मरेत पुण्डरीकाक्षं सबाह्याभ्यंतर शुचिः

हे निखिल तत्व !
ब्रह्मांड-शक्ति !!
हे महज्ज्योति !!!
आओ, उतरो
पंचभूत प्राणों में—
हरि ओऽम्

[सहसा बिजली की कोर टूटकर नीचे लपकती है। फिर—राम राम... की असंख्य ध्वनियां उठती हैं। तत्पश्चात—बालक की किलकारी। मृत बालक जी उठता है। सब चकित से देखते हैं। मंदिरा पागल सी पुकारती है]

मंदिरा

ओह, महाश्चर्य,
राम, भगवान
देखो यह अद्भुत चमत्कार
जीवित हो गया पुत्र मेरा
जैसे केवल निद्रा ही इसको आई थी !
हे राम !
तुमको सौगंध तुम्हारी है
इस निखिल विश्व की
जलथल की
सीता की और धरित्री की
रवि, शशि, ध्रुव, तारक मंडल की
अपने प्रिय सकल प्रजाजन की
जो तुम अंतिम आचमन करो ।

लाओ यह जल मैं लेलूँ
छिड़कूं अपने पर,
अपने सुत पर
धरती की सब संतानों पर
जिससे जबतक है नाम राम का
दुःख न हो !

(आगे बढ़कर अंजली का जल ले लेती है)

राम

यह क्या किया देवि तुमने
मेरा व्रत-भंग किया
संकल्प न पूरा हो पाया !

मंदिरा

(विह्वल होकर)

वह तो पहले ही पूर्ण हुआ
मेरे परमेश्वर राम ।
संकल्प तुम्हारे मन में आते ही आते
साकार हुआ
मेरी गोदी का फूल हुआ
मेरे जीवन की सकल कामना पूर्ण हुई ।
इसलिए आज मैं
खिला हुआ शिशु-फूल
तुम्हारे चरणों पर ही चढ़ा रही ।

(शिशु को राम के चरणों पर रखती है)

राम

आयुष्मान हो पुत्र
फल तुम इस मस्तक के

जाओ सुखी करो अपनी माँ की गोदी को
आज सुखी हूँ मैं भी
क्योंकि दुख मिटा तुम्हारा
है दायित्व तुम्हारे सुख-दुख का
सब मुझ पर
व्यर्थ न हुआ त्याग सीता का
और लोकहित
प्राणों की बलि देने का संकल्प हमारा ।

(ठहरकर)

जाओ तुम
आने वाली संतति को संदेश सुनाना,
त्याग कभी भी विफल न जाता
बलिदानों से ही मानव ईश्वर बन सकता
और धरा पर सुख का अमर स्वर्ग है आता ।

[परदा गिरने लगता है तभी साकेत भवनों पर मंगल ध्वनि उठती है]

सप्तलोक नवद्वीप चराचर
सुख का घर हो
रामराज्य का स्वर्ग धरा पर
अजर अमर हो !

[क्रमशः विलीन हो जाती है और परदा पूरा गिर जाता है]

रेडियो फीचर

ध्वनि नाट्य की विशेषताओं के अतिरिक्त उसका स्वरूप प्रायः सूचनात्मक और प्रचारात्मक होता है। इसमें विशेष विषय पर, वह चाहे कैसा भी शुष्क हो, प्रकाश डालने के लिए उससे सम्बद्ध बातों का नाट्य सा किया जाता है।

प्रस्तुत रूपक में पंचायतराज का पूरा इतिहास आ जाता है।

पंचायत राज

[प्रारम्भिक संगीत के बाद राम की पुकार]

राम — (पुकारकर) भई जल्दी से भिजवा दो। मुझे जाना है। बहुत थोड़ा समय रह गया है। ...(किसी के आने का स्वर)

पांडे — हलो राम ? कैसे हो भई; नमस्ते।

राम — नमस्ते। ओहो पांडे हैं। किधर टपक पड़े आज। आओ, आओ, यहाँ बैठिये।

पांडे — आया हूं तो बैठूंगा ही। तुमसे मिले बहुत दिन हो गए थे न, सो चला आया पर तुम तो अभी कहां जाने की बात कर रहे थे। कहाँ जाने को देर हो रही है।

राम — हाँ जाना तो है। तुम जानते हो मुझे आवारागर्दी करने का शौक है। घुमक्कड़ ठहरा। और जब से घुमक्कड़ शास्त्र पढ़ लिया है तो बस बाहर निकलने का बहाना ढूंढा करता हूं। और बात भी ठीक है। यह जिन्दगी सैर करने के लिए मिली है।

सैर कर दुनिया की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ ?
और जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ ?

पांडे — ठीक है, ठीक है, खुश-किस्मत हो यार जो दिल की जवानी ने तुम्हें धोखा नहीं दिया है वरना यहाँ तो वह बात है :—

इधर आँख झपकी उधर ढल गई वह ।
जवानी भी इक धूप थी दोपहर की ।

खैर अपना अपना भाग है । मगर तुम यह बताओ जा कहाँ रहे हो ?

राम कोई खास जगह नहीं । मुफ्त की सवारी है । किधर ही निकल जाऊँगा ।

पांडे आखिर किधर ? समन्दर में तो नहीं गिर पड़ोगे ।

राम (हँस कर) तुम समझते हो कि समन्दर में गिरना कोई बड़ा कठिन काम है ।नहीं पांडे, वह सब से आसान काम है, पर मैं आसान काम करने में विश्वास नहीं करता मैं तो एक बड़े मिशन पर जा रहा हूं ।

पांडे तुम तो पहेलियाँ बुझा रहे हो यार । बताते कुछ हो नहीं ।

राम घबराओ नहीं तुमको भी ले चलेंगे । तुम्हारे जैसों के मतलब की बात है ।

पांडे ओफ्फ ? तुमसे कुछ पता लगाना बालू से तेल निकालना है । अच्छा हम भाभी से पूछे लेते हैं । अरे लो भाभी तो इधर ही आ रही है । ओह चाय भी है । भाभी नमस्ते ।

सीता (दूर से) नमस्ते

राम थिंक आफ दी डेवल एंड ही इज देअर ।

[सीता का प्रवेश]

सीता क्या कहा ? (चाय की ट्रे की आवाज)

राम (एक दम) मैंने कहा कि अन्न पूर्णा को याद करो और वह उसी वक्त प्रस्तुत हो जाती है ।

पांडे (हँसता है) भाभी तुम्हारे इन स्वामी का तो दिमाग बिगड़ गया है । डेवल का अर्थ अन्नपूर्णा करते हैं ।

राम हैं, हैं, क्या कहा ? तुम समझते नहीं । अच्छा चाय पिओ । बोलो स्ट्रांग या लाइट ?

सीता मैं इन्हें अच्छी तरह जानती हूँ । इन्हें घूमने और अर्थ करने के अतिरिक्त आता क्या है ? जिस तरह ये अन्नपूर्णा को शैतान और शैतान को अन्नपूर्णा बना सकते हैं उसी तरह जहन्नुम को स्वर्ग और स्वर्ग को रोरव नरक बना देते हैं । पूछिए इनसे कहाँ घूमने जा रहे हो ?

पांडे यही तो पूछ रहा था पर ये तो बताते ही नहीं । कहते हैं तुम्हें भी ले चलूंगा । तुम्हें तो पता होगा । तुम्हीं बतादो !

सीता मैं बताऊँ । अच्छा पहले तुम चाय पी लो । लो... !

पांडे ओह धन्यवाद, शुक्रिया, (घूंट भर कर) हाँ...

सीता ये गाँव जा रहे हैं । कहते हैं ग्राम्य-जीवन का अध्ययन करूँगा । विशेष कर स्वराज्य मिलने के बाद के गाँवों का... ।

पांडे सच ।

सीता जीहाँ, कहते हैं । अब तो गाँवों में पंचायत राज्य हो गया है । मैं जानना चाहती हूँ कि इस राज्य ने गाँवों में क्या क्या परिवर्तन किये हैं ।

पांडे पंचायत राज्य । ओ हो हो...हमारी सरकार ने जो गाँवों में पंचायतें बनाई हैं, उनसे मतलब है ?

सीता जीहाँ, कहते हैं अब तो गाँव स्वर्ग बन गए होंगे । चारों तरफ नन्दन बन की सुगन्धि उड़ती होगी । घर-घर में कामधनु बंधी होगी । गली गली कल्पवृक्ष लगे होंगे । कुओं से दूध निकलता होगा । नालियों में... ।

पांडे (हँसता हुआ) बस...बस...बस... भाभी ! आगे कुछ मत कहो । मैं सब समझ गया ।

राम — एक बात नहीं समझे होंगे। मैंने यह भी कहा था, कि वहाँ अब न दुःख होगा, न चिन्ता होगी, न कष्ट होगा, न पीड़ा।

पांडे — तो क्या होगा ?

राम — राम राज्य।

पांडे — अयोध्या के राजा रामचन्द्र का राज्य या तुम्हारा।

सीता — किसी का भी हो। सीता को बनवास अवश्य मिलेगा।

राम — देखो सीता। तुम्हें बनवास दे दूँ इतनी ताकत मुझमें नहीं है और न मैं चाहता ही हूं। तुम बहुत मजाक उड़ा चुकी। मैं अध्ययन करने जा रहा हूँ और जाऊँगा। तुम नहीं चलती तो न चलो। पांडे, तुम तो चलोगे ही। सैर की सैर और ऊपर से ज्ञान, दोनों की प्राप्ति लाभ है। फिर तुम ठहरे विद्यार्थी, न हो पंचायत राज्य पर थीसिस लिख देना। ये देखो नोट्स् मेरे पास तैयार है...।

पांडे — तुम तो वास्तव में सीरियस हो। मैं तो मजाक समझ रहा था। तुम्हारा सुझाव अच्छा है। मैं तुम्हारे साथ चलूँगा। कितनी देर है ?

राम — बस गाड़ी आने की देर है। तब तक तुम ये नोट्स् पढ़ डालो। पंचायतों के इतिहास का पता लग जायगा तो वहाँ की हालत को समझने में सहायता मिलेगी।

पांडे — भाई पढ़ूंगा तो फिर। अब तुम ही संक्षेप में कुछ बता दो। क्या पंचायतों का कोई बहुत पुराना इतिहास है ?

राम — जान पड़ता है तुमने फीस देकर इतिहास नहीं पढ़ा, माफी में पढ़े हो। अरे भाई ! वैदिक युग में पंचायतों द्वारा ही राज्य होता था।

पांडे — सच !

राम ए यह देखो, यह क्या लिखा है, "विशः अर्थात प्रजा राजा का वरण करती थी" राजा एक समिति की सहायता से राज्य करता था। समिति समूचि विशः की संस्था थी। ग्रामीणी, सूत, रथकार और कर्मकार उसमें अवश्य शामिल होते थे। कई राष्ट्र ऐसे भी थे जिसमें एक राजा न होता था, समिति के सदस्य मिल कर राज्य करते थे।

पांडे यह तो वास्तव में गम्भीर बात है। तुमने तो नियम पूर्वक अध्ययन किया है।

राम मैं किसी काम को आधे दिल से नहीं करता। प्रमाण पर प्रमाण मैंने इकट्ठे किए हैं और वे भी युग वार! यह दूसरी पुस्तक देखो, इसमें त्रेता और द्वापर युग की पंचायतों का वर्णन है। देखो यह लिखा है, ऐसा जान पड़ता है कि पेशेवालों की पंचायतें भी उस समय अवश्य थीं। जो पंचायत का सभापति होता- श्रेष्ठ कहलाता था, और देखो इस बात का वर्णन अथर्व वेद, शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद, बृहदारन्यकोपनिषद...

पांडे बस...बस मुझे तो याद भी नहीं रहेंगे। मैं लिख लेता हूं। अच्छा भाभी, तुम चाय ले आओ। पेट में काफी गर्मी आ गई है। अब जरा मस्तिष्क के लिये भी भोजन जुटा लूँ।

सीता मैं भी बैठी रहूं तो कोई हर्ज होगा।

राम अजी आप सर माथे पर। पर मजाक न उड़ाइये। अब मैं गम्भीर हो गया हूं।

सीता जी नहीं, मैं तो आपका व्याख्यान सुनूंगी।

पांडे अच्छा भाई, मैंने लिख लिए। हां, यह क्या है, वेद मंत्र (पढ़ता है) "येनेन्द्राय समभरः पयांस्युतमेन ब्रह्मणा जान वेदः—

तेन त्वमग्ने, इह वर्धयेमं, सजातानां श्रैष्ठ्य आग्ने ह्येनम

॥अथर्ववेद. १।६।३

हे अग्ने। जिस मंत्र से तू देवताओं को उत्तम अन्न प्राप्त कराता है उसी मन्त्र से इस पुरुष को श्रेष्ठ पद का अधिकारी बना।" ठीक, मैंने सब कुछ पढ़ लिया। इसका सार यह है :—

[फेड इन स्वर]

स्वर १ वैदिक युग में गांव लगभग स्वतन्त्र होते थे।

स्वर २ उन पर चुनी हुई पंचायत राज करती थी।

स्वर ३ वे राजा को चुनती थीं।

स्वर ४ वे "राजा ही राष्ट्र है" इस सिद्धान्त को नहीं मानती थी।

स्वर ५ वे धर्मशालाओं और नहरों आदि का निर्माण करती थीं।

[फेड आउट]

राम · जी हां, तुम ठीक समझे वैदिक युग में यही अवस्था थी। वहां हर गांव में पंचायतघर होता था। जहां गांव के बड़े बूढ़े इकट्ठे होते थे। जहां घर नहीं होते थे, वहां एक बड़ा पेड़ होता था, जहां हर साल गांव के स्वाधीन आदमी इकट्ठे होकर अपनी पंचायत चुनते थे।

पांडे क्यों राम। अपने भगवान कृष्ण के यादव कुल में भी तो पंचायती राज था।

राम तुमने बिलकुल ठीक उदाहरण दिया है। उनके कुल में दो पंचायतें थीं। एक वृष्णि शाखा की जिसके प्रधान कृष्ण थे। दूसरी अन्धक शाखा की जिसके सभापति उनके नाना उग्रसेन थे। दोनों मिलकर राज करते थे पर पंच लोग बहुत लड़ते थे। कृष्ण उन्हें बड़ा समझाते थे। पर वे नहीं मानते थे। तब वे कभी नारद से सलाह लेते, तो कभी भीष्म से मंत्रणा करते—

[फेड इन कृष्ण और भीष्म]

कृष्ण पितामह मैं कृष्ण आपको प्रणाम करता हूँ।

भीष्म कौन कृष्ण। आओ आओ यदुराज। आओ यहां पधारो तुम्हारे संघ में सब कुशल है न ? अन्धक और वृष्णि मिल कर रहते हैं न ?

कृष्ण पितामह, यही तो समस्या है। सत्ता ने उन्हें पागल बना दिया है।

भीष्म सत्ता सबको पागल कर देती है कृष्ण। कुरुकुल का हाल भी अच्छा नहीं है। पर कृष्ण, तुम जैसे नीतिज्ञ के रहते यदुकुल में कलह नहीं होना चाहिए।

कृष्ण पितामह मैं यही चाहता हूँ, कलह न हो। यदुकुल के गणराज्य बने रहे पर मैं निराश होता जा रहा हूं। मैं आपसे यही पूछने आया हूं कि मैं क्या करूँ।

भीष्म मैं तुम्हारी स्थिति समझता हूँ। तुम नीतिज्ञों में सर्वश्रेष्ट हो, तुम्हें मैं क्या बताऊँगा ?

कृष्ण फिर भी दादा, आप नीतिज्ञों के आचार्य हैं। आप कोई मार्ग सुझा सकते हैं।

भीष्म कृष्ण ! सम भूमि पर सब चल सकते हैं पर विपन भूमि पर बोझा ढोना आसान नहीं है। तुम उसी ऊबड़ खाबड़ भूमि पर चल रहे हो। तुम्हारे लिए एक ही मार्ग है।

कृष्ण वह क्या मार्ग है दादा ?

भीष्म मधुर वचन। हे कृष्ण, मधुर वचन रूपी एक अनायस शस्त्र है। तुम उसी के प्रयोग से ज्ञातियों को वश में करो।

[फेड आउट]

राम भीष्म ने उन्हें मीठा बोलने की सलाह दी, नारद ने त्याग करने की। कृष्ण ने सब कुछ किया पर यादवों का पंचायती राज एक बार

नष्ट हो ही गया पर खैर यह दूसरी बात है। इससे यह साफ प्रकट हो जाता है कि केवल गांवों में ही नहीं, सब कहीं पंचायती राज्य था। वे राज्य युद्ध काल में भी थे।

सीता क्या युद्धकाल में भी पंचायती राज थे ?

राम बहुत थे। जनपद राज्य सब पंचायती थे। यही नहीं उस काल में तो प्रायः सभी कारीगरियों और कलाओं की पंचायतें बनी हुई थीं। (फेड इन स्वर)

स्वर १ बढ़ई और लुहार,

स्वर २ सुनार और चित्रकार,

स्वर ३ माली और किसान,

स्वर ४ ग्वाले और बनजारे,

स्वर ५ व्यापारी और साहूकार,

स्वर ६ सभी की पंचायतें थीं।

स्वर ७ इनका सरपंच जेठक कहलाता था !

स्वर ८ इनका पेशा कुल के अनुसार चलता था।

स्वर ६ इनका धन्धा अपनी जगह में बंध जाता था।

पांडे वास्तव में ऐसा लगता है उस काल के लोग बहुत समझदार थे।

(फेड आउट)

सीता समझदार थे तभी तो स्वाधीन थे पर आज वह बात कहां है।

राम उतावले मत बनो। अभी स्वाधीन हुए कितने दिन हुए हैं ? हां, तो मैं तुम्हें बता रहा था। क्या बता रहा था। मैं कह रहा था जहां राजा होते थे वहां भी पंचायतों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। कहां कहां तो पंचायतों के सरपंच राज्य के प्रधान मन्त्री तक होते थे। काशिराज में तो एक सरपंच सारे राज्य का कोषाध्यक्ष था।

पांडे अच्छा।

राम जीहां, और अधिकार भी पूरे थे। (फेड इन स्वर)

स्वर १ वे राज्य की व्यवस्था करती थीं।

स्वर २ वे कानून बनाती थीं।

स्वर ३ वे मुकदमों का फैसला करती थीं।

स्वर ४ वे पंचों के घरेलू झगड़ों का फैसला भी करती थीं।

(फेड आउट)

राम विनय पिटक में एक मजेदार कहानी आती है। एक स्त्री सन्यासिनी बनने विहार पहुँची : [फेड इन साधु]

साधु तो तुम सन्यासिनी होना चाहती हो।

स्त्री हां, भन्ते !

साधु पर किसलिए ? क्यों संसार को छोड़ना चाहती हो ?

स्त्री भन्ते। मेरा मन संसार से ऊब गया है। मेरा मन पश्चाताप की आग में जल रहा है।

साधु पश्चाताप किस लिए ? क्या तुमने कोई पाप किया है ?

स्त्री भन्ते...

साधु हां, हां, बोलो। यहां तुम्हें कोई बात नहीं छिपानी चाहिए।

स्त्री भन्ते। मैं कुछ नहीं छिपाऊंगी। मैंने चोरी की थी।

साधु तुमने चोरी की थी।

स्त्री हां भन्ते।

साधु तब मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता।

स्त्री (कातर होकर) क्यों भन्ते ? मुझे उस चोरी का बहुत दुःख है। मैं दण्ड भुगत चुकी हूं। मैं उस आग में जल रही हूं। मुझे दीक्षा दो भन्ते। जिससे मैं अपना शेष जीवन धर्म में लगा सकूं।

साधु शांत, देवी शान्त। विहार के अपने नियम हैं। उसे तबतक किसी चोर स्त्री को सन्यासिनी बनाने का अधिकार नहीं है जबतक उसके

गांव की पंचायत आज्ञा न दे दे ।

(फेड आउट)

सीता ऐसी अवस्था थी उस युग में ।

राम जीहां !

सीता तब तो वह वास्तव में रामराज्य था ।

पांडे बेशक रामराज्य और क्या हो सकता है । भाभी तुम तो वैसे ही राम का मजाक उड़ा रही थी । ये बातें सुनकर मुझे तो ऐसा लग रहा है, कि भारत के गांव-गांव में पंचायतें स्थापित कर देनी चाहिए । पर क्यों राम, ये पंचायतें बन्द कब हुई ।

राम वह भी बताऊंगा, तुम सुने जाओ । मौर्य काल में यानी चाणक्य के युग में पंचायतें तो बनी रहीं परन्तु उनपर सरकारी नियन्त्रण बढ़ गया था । हर गांव में बड़े बूढ़ों की एक पंचायात होती थी । इस पंचायत का जो कोई हरपंच होता था वही सरकार की ओर से गांव का मुखिया माना जाता था । लेकिन फिर भी...(फेड इन स्वर)

स्वर१ गांव का भीतरी अर्थ तंत्र बिलकुल स्वतन्त्र होता था ।

स्वर२ गांव के भीतरी बन्दोबस्त में किसी बाहरी का बिलकुल हाथ नहीं होता था।

स्वर३ छोटी छोटी पंचायतों को मिलाकर लोग संघ बना लेते थे ।

स्वर४ और संघों के अधिकार बहुत बढ़े हुए थे । (फेड आउट)

राम और चन्द्रगुप्त की सभा में रहने वाले यूनानी दूत मेगास्थनीज ने लिखा है कि नगर का प्रबन्ध एक म्यूनिसिपल कमीशन द्वारा होता था । इसमें ६ पंचायतें थी और प्रत्येक पंचायत में पांच सदस्य थे । ये पंचायतें:— (फेड इन स्वर)

स्वर१ प्रजा के जन्म मरण का हिसाब रखती थीं ।

स्वर२ चुंगी वसूल करती थीं !

स्वर३ दस्तकारी का प्रबन्ध करती थीं।

स्वर४ विदेशी लोगों की देखभाल करती थीं।

स्वर५ व्यापार का प्रबन्ध करती थीं।

स्वर६ दस्तकारी की चीजों की बिक्री का प्रबन्ध करती थीं। (फेड आउट)

पांडे कुछ भी हो जान पड़ता है कि इस युग में पंचायतों का बड़ा महत्व था।

राम महत्व था तभी तो राजा लोग उनपर कब्जा करने जारहे थे। वे पंचायतों के बने संघों को आपस में लड़ाकर पंचायतों को निर्बल करने का प्रयत्न किया करते थे। लेकिन फिर भी ग्यारहवीं और बारहवीं सदी तक पंचायतों का प्रभुत्व कम नहीं हुआ था। तीसरी चौथी सदी में, जिस काल में महाभारत लिखा गया था पंचायतों की बड़ी प्रतिष्ठा थी— (फेड इन स्वर)

स्वर१ पंचायत की रीतियां और नीतियां धर्मशास्त्र की तरह मानी जाती थी।

स्वर२ जो पंचायत के सामने वचन देकर उसे तोड़ता था, राजा उसे देश निकाले का दण्ड देता था।

स्वर३ पंचायत के विरुद्ध पाप करने वाले के लिए कोई प्रायश्चित नहीं था। (फेड आउट)

पांडे हां, हां, मैंने पढ़ा है, मनुस्मृति में यह सब बातें लिखी हैं।

राम मनु ही नहीं नारदस्मृति, शुक्रनीतिसार आदि धर्मग्रंथों में पंचायतों की पूरी पूरी चर्चा है। देखो गुप्त काल में तो कारीगरों, कलावन्तों, साहूकारों के साथ साथ सन्यासियों तक की पंचायतें संगठित थी!

सीता सन्यासियों की पंचायत थी।

पांडे यानी भाभी। आप संयासी को संसार से अलग समझती हैं। अरे भाई उनके भी नियम तो होते ही हैं।

राम — अजी उस काल में तो पंचायतों के नियम सरकारी कानून के अन्तर्गत समझे जाते थे। सरकार उनको मानती थी। नारद स्मृति में लिखा है...

स्वर — जो लोग पंचायत के सदस्यों में फूट डालने के अपराधी होते थे उन्हें सरकार की ओर से बड़ा कड़ा दण्ड मिलता था, क्योंकि यदि ऐसों को दण्ड न दिया जाय तो यह फूट की बीमारी, महामारी की तरह महा भयानक रीति से फैल जायगी।

राम — याज्ञवल्क्य संहिता कहती है।

स्वर — जो कोई पंचायत की चोरी करे, या वचन तोड़े उसे देश निकाला दिया जाय और उसकी सारी जायदाद जब्त करली जाय।

राम — शुक्रनीति सार का कथन है...

स्वर १ — अगर कोई पंच सार्वजनिक पैसे का हिसाब नहीं देता था तो वह हटा दिया जाता था।

स्वर २ — किसी पंच का सगा या रिश्तेदार नौकरी नहीं पा सकता था।

स्वर ३ — स्त्रियां भी पंच बन सकती थीं।

राम — पंचायत की उस काल में कितनी प्रतिष्ठा थी इसका इस घटना से पता लगता है। स्कन्दगुप्त के काल में एक ब्राह्मण ने जिसके वंश में सम्भवतः कोई नहीं था अपनी जायदाद दान की:—

(फेडइन राजकर्मचारी)

राजकर्मचारी — मुझे आपने याद किया है। मैं आ गया हूं।

ब्राह्मण — जीहां, जीहां, मैंने आपको कष्ट दिया है।

राज० — कहिए क्या बात है ?

ब्रा० — बात यह है कि अब मैं बूढ़ा हुआ। न जाने कब आंख मिच जाए। पीछे कौन बैठा है जो देखेगा। इसलिए मैं अपनी सारी जायदाद दान करना चाहता हूं। आप कृपाकर दानपत्र लिख दीजिए!

राज० आप बोलते जाइए, मैं लिखता रहूंगा ।

ब्रा० यह लीजिए यह सूची है जिसमें मेरी जायदाद का पूरा विवरण है ।

राज० ठीक है, मैं लिख लूंगा पर आप इसे किसे दान करना चाहते है ।

ब्रा० सूर्य के मंदिर को ।

राज० आपकी कोई शर्त है ?

ब्रा० हां मेरी एक इच्छा यह है कि मेरी जायदाद से जो व्याज मिले उससे सूर्य देवता की पूजा के लिए मन्दिर में नित्य एक प्रदीप जला करे ।

राज० उसके लिए आप क्या प्रबन्ध सुझाते हैं ।

ब्रा० मैं समझता हूँ कि इस काम के लिए मेरी जायदाद पर तेलियों की पंचायत का कब्जा रहना चाहिए । वे ही दीप जलाया करेंगे ।

राज० ठीक है पर तेलियों की कौनसी पंचायत को आप कब्जा देना चाहेंगे ।

ब्रा० वही जिसका सरपंच जीवक है । इन्द्रपुर का रहने वाला जीवक ।

राज० मैं समझ गया । कोई और बात ।

ब्रा० और, हां मेरी इस जायदाद पर उस पंचयात का कब्जा उस समय तक रहेगा जब तक कि इस बस्ती से चले जाने पर भी उसमें पूरा एका बना रहेगा !

[फेड आउट]

सीता इस घटना से पता लगता है कि पंचायत को इसकाल में भी बड़े अधिकार थे ।

राम अधिकार क्या, वे शासन करती थीं । गुप्त काल में वे बराबर शक्ति शाली रहीं । हर्ष के समय में भी उसकी शक्ति बनी रही । ब्रहस्पति संहिता में लिखा है ।

सीता पंचायत की स्थापना के प्रारम्भ में पहले परस्पर विश्वास दृढ़ करके किसी पवित्र विधि या लिखा पढ़ी या मध्यस्थ से निश्चय कराकर पंचायत का काम करने वाले उसके श्रेष्ठी और दो या तीन या पांच और सहायक होते थे।

राम इसी तरह चोलों के राज्य में पंचायतों का प्रभुत्व था। वस्तुतः उनका राज्य ही ग्राम पंचायतों पर निर्भर था। प्रत्येक ग्राम की एक चुनी हुई सभा होती थी। उसकी कई समितियां बनती थीं। उनके बड़े २ भवन होते थे। छोटे गांवों में वट वृक्ष के नीचे सभायें जुटती थीं। एक बार एक ग्राम सभा को सूचना मिली कि एक तालाब में पानी बढ़ रहा है।

[फेड इन सदस्यादि]

एक सदस्य मेरा विश्वास है कि अगर तालाब में पानी इसी प्रकार बढ़ता रहा तो गांव को हानि पहुंचेगी।

पंच १ बात तो तुम्हारी ठीक है।

पंच २ बेशक मैंने भी तालाब की स्थिति देखी है। उसे शीघ्र ही सुधारना चाहिए।

पंच १ यह काम तालाब समिति का है।

सदस्य जीहां। है तो और वह चाहती भी है पर उसके पास धन नहीं है। वह पंचायत से सहायता चाहती है।

पंच २ मैं समझता हूं इस स्थिति में हमें सहायता देनी चाहिए।

पंच १ मुझे कोई आपत्ति नहीं है बल्कि मैं कहूँगा समिति को बिना ब्याज कर्जा देना चाहिए।

सरपंच मैं भी यही समझता हूं। हम कर्ज देंगे और ब्याज नहीं लेंगे पर तालाब समिति को ब्याज देना अवश्य चाहिए।

पंच २ हम नहीं लेंगे तो वह किसे देगी ?

सरपंच मन्दिर समिति को।

सब (एक साथ) ठीक है, ठीक है, हमें मंजूर है ।

(फेड आऊट)

राम यही नहीं यदि कोई किसान कुछ वर्ष तक कर न देता था तो उससे भूमि छीन ली जाती थी। ऐसी जमीन फिर नीलाम कर दी जाती थी। भूमि बेचने या खरीदने पर ग्राम सभा उसका पूरा विवरण अपने पास रखती थी !

पांडे परन्तु प्रश्न यह है कि ऐसी उपयोगी संस्था समाप्त कैसे हो गई ?

सीता हां, यह आश्चर्यजनक बात है कि एक दिन ऐसी संस्थाओं का पता भी नहीं रहा।

राम भाई, यह तो ऐसा ही प्रश्न है जैसे कोई पूछे हम गुलाम क्यों हुए ? हां, पंचायतों के नष्ट होने का एक और भी कारण था। वह यह था कि देश के शासक जब भूमि कर बेदर्दी, कड़ाई और पशुता से वसूल करने लगे और अंग्रेजों ने भी वही नीति जारी रखी और शहरों में ऊंचे ऊंचे न्यायालय स्थापित किये तो पंचायतें अत्याचार और हृदय हीनता के साथ सहयोग न कर सकीं और टूट गई !

पांडे हां, भाई। तुम ठीक कहते हो। बुरे दिन आते हैं तो सब कुछ बिगड़ जाता है। हम गुलाम क्या हुए हमारा ढांचा ही बिगड़ गया।

राम यूं क्यों नहीं कहते कि जब हमारा ढांचा बिगड़ा तो हम गुलाम हुए और हमारी शासन व्यवस्था समाप्त हो गई। पंचायतें ऐसी अवस्था में कैसे बच सकती थीं। विद्वानों ने, विशेषकर विदेशियों ने

इन पंचायतों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। ये देखो, ये कुछ उद्धरण मैंने ले लिए हैं।

(फेड इन स्वर)

स्वर १ इन पंचायतों में दोनों दलों के लिये यह आवश्यक था कि वे सच सच बयान करें। छोटी सी जमात में जहां लोग रात दिन एक ही स्थान पर रहते हों यह सम्भव नहीं कि कोई व्यक्ति गांववालों के सामने झूँठ बोले।

स्वर २ मेरा विश्वास है कि दुनियां भर में और किसी से इतनी आसानी से सच सच नहीं कहाया जा सकता जितनी आसानी से हिन्दुस्तानियों से पंचायत के सामने।

स्वर ३ गांव की पंचायतें छोटे छोटे किसान राज्य हैं। जब और कोई भी चीज नहीं टिक पाती तब भी यह किसान राज्य अचल रहते हैं। क्रान्तियों के बाद क्रान्तियां होती हैं लेकिन ये गांव अचल हैं। इन पंचायतों से बहुत ऊँचे दर्जे का सुख और सुविधाएं प्राप्त हैं और बहुत हद तक आजादी और स्वावलम्बन का उपयोग होता है।

स्वर ४ पंचायतें न्याय करती थीं और गांव के भलाई के कामों के लिए टैक्स लगाती थीं। यद्यपि गांव केन्द्रीय सरकार के अधीन होते थे, लेकिन उन्हें गांव के भीतर पूर्ण स्वराज्य मिला हुआ था।

(फेड आउट)

राम इस प्रकार तुम देखोगे कि हमारे गांवों में पंचायतों के रूप में जिस आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का परिचय वैदिक काल से मिलता है, आज की सभ्यता का अभिमान करने वाले शहरों के लोग उसकी

कल्पना तक नहीं कर सके। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी इस बात को समझते थे। इसलिये वे बराबर ग्राम्य स्वराज्य अर्थात् पंचायतों की स्थापना पर जोर देते थे। कांग्रेस उन्हीं के नेतृत्व में बराबर खर्चीले न्याय और शासन के विरुद्ध लड़ती रहीं।

सीता सुना था कि अंग्रेजी सरकार ने भी पंचायतें स्थापित की थी।

राम हां, वह तो आंखों में धूल झोंकने की बात थी। १९२० के कानून के आधीन उन्होंने पंचायत बनाई थीं। उनके अधिकार बहुत कम थे और उन पर तहसीलदारों और थानेदारों का प्रभुत्व था। इन अफसरों द्वारा बनाए गए जमीदाराना तबीयत के पंच अत्याचार के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते थे। फिर वहां कचहरियों का भद्दा अनुकरण होता था। वही लम्बे मुकदमें, वही गवाहों का जाल। शासन का कोई अधिकार उन्हें नहीं था।

पांडे तब तो लोगों में बड़ा असन्तोष हुआ होगा।

राम असन्तोष न होता तो और क्या होता। हमारे यहां पंच परमेश्वर की कहावत जो चली आती है उसको सरकार के पिट्ठुओं के न्याय से बड़ा धक्का लगा। १९३७ में जो थोड़े दिन के लिये जनता का राज्य हुआ उसमें भी पंचायतों को ठीक करने के लिए यत्न किए गए परन्तु देश में गड़बड़ हो जाने से वह काम बीच में ही रह गया! हां अब जब भारत स्वतन्त्र हो गया है तो उन्होंने इस ओर पूरा ध्यान दिया है। अब गांवों का पूरा शासन पंचायतों को सौंप देने की व्यवस्था की है।

[फेडइन स्वर]

स्वर १ इन पंचायतों को ग्राम के यातायात का प्रबन्ध करने का अधिकार है।

स्वर २ इन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई का प्रबन्ध करने का अधिकार है।

स्वर ३ ये अस्पताल, औषधालय, स्कूल और पुस्तकालय खोल सकती हैं।

स्वर ४ ये कृषि और पशुओं की उन्नति के लिए मेले और बाजार लगा सकती हैं।

स्वर ५ ये ग्रामीण-स्वयं-सेवक दल बना सकती हैं।

स्वर ६ इन्हें टैक्स लगाने, वसूल करने और ऋण लेने के अधिकार भी हैं।

स्वर ७ ये सरकारी कर्मचारियों की आलोचना कर सकती हैं।

[फेड आउट]

पांडे भई इन्हें तो बहुत अधिकार हैं।

सीता पूरा स्वराज्य है!

राम स्वराज्य नहीं तो और क्या होता? इनका संगठन बालिग मताधिकार के आधार पर होता है। ये बालिग जनता की मदद से बजट बनाती है। इनकी पंचायती अदालतें बन रही हैं। जनता की इच्छा के विरुद्ध पंच कोई काम नहीं कर सकता।

पांडे भई तुम्हारी बातें सुनकर तो मेरा मन गाँवों में दौड़ जाने को कर रहा है।

सीता और मेरा भी।

राम तो फिर चलो। मोटर आने वाली है। (**मोटर का हार्न**) लो वह आ गई। आओ आओ। अरे सीता तुम जल्दी से तैयार हो आओ (दूर जाता स्वर) पांडे। (**अन्तराल संगीत। मोटर के चलने का स्वर फिर रुकने का स्वर**)

राम बस यहीं उतर पड़ो, वहाँ मोटर से चलना ठीक नहीं रहेगा। समझेंगे कोई अफसर आया है।

पांडे बात तो ठीक है, पैदल चलेंगे तो कुछ परीक्षा भी हो जावेगी?

सीता वैसे सड़क तो गाँव के अन्दर तक ठीक जान पड़ती है। जहाँ हम बड़ी सड़क से अलग हुए थे वहीं से नई बनी हुई है। यहाँ का डिस्ट्रिक्ट बोर्ड समझदार मालूम होता है।

राम मुझे तो ऐसा लगता है कि यह सड़क पंचायत ने बनाई है। पूछते हैं। हाँ, वह देखो उस पेड़ के नीचे एक चौधरी साहब बैठे हैं। उनसे ही पूछें।

पांडे चलो। जान पड़ता है वहाँ कोई संगत बैठेगी। कई चारपाइयां पड़ी हैं। हुक्के भी रक्खे हैं।

राम लगता तो है। देखते हैं। (चलने का स्वर)

राम चौधरी साहब नमस्ते।

पांडे नमस्ते, चौधरी साहब।

सीता नमस्ते।

[फेड इन चौधरी]

चौधरी (हुक्का गुडगुडाता हुआ) निमस्ते (हंसकर) आओ आओ खड़े क्यों रह गए। यहाँ बैठो। यहाँ, बीबीजी तम टिको यहाँ आ जाओ।

राम सब ठीक है, चौधरी साहब, हम बैठने नहीं आए। घूम रहे थे।

चौधरी हाँ, हाँ, वह तो मैं जानूं हूं। उस पट्रोल की खड़ खड़ में आए हो। खूब घूमो, बेटा, यहाँ ठण्डी हवा मिलती है और भगवान ने चाहा तो कुछ दिनों में और तरक्की दिखाई देगी।

पांडे वह तो है ही चौधरी साहब, मैंने कहा चौधरी साहब, यहां तो सड़क बड़ी अच्छी है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने बनवाई दिक्खे।

चौधरी (गुडगुडाकर) ना, ना बेटा। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का इससे क्या वास्ता ! अब तो हमारी पंचायत यो काम करती है। उसीने यो सड़क बनाई है ! तीन मील लम्बी है। सब काम गाँव के

मानसों ने अपने आप किया है। खजाने से एक पैसा नहीं लिया।

सीता सच्च ?

चौधरी (हंसकर) तमने कुछ पता नहीं दिक्खे बेटा! दिको हमारे गांवों में सरकार ने अब पंचायतें बनादी हैं। यानी गांव का सारा परबन्ध गांव वाले करें हैं। पढ़ाई, लिखाई, सफाई, हाट बाजार, खेती बाड़ी, सड़क बनाना और...और राम तुम्हारा भला करे अस्पताल खोलना, अखबार पढ़ने के लिए घर बनाना, सब काम हम करें हैं।

राम ओहो, आप लोग तो अपने राजा आप हो गये हैं।

सीता (गुड़गड़ाहट) बनते क्यों न? अब तो अपना मुल्क आजाद है! गांधी महात्मा कहा करते थे न कि राज तो किसान मजदूर का है! हम तो उनके नौकर हैं। सो बेटा धीरे धीरे उनकी बात ठीक हो रही है! वे होते तो अबतक यहां सुरग बन जाता। (सांस लेकर) पर भगवान की मरजी खैर अब भी भईया, एक स्कूल खोल दिया है। यो देखो यो जो कच्ची सड़क है दो मील की है। दस घंटे में बना दी थी और कई अखबार भी आने लगे है।

पांडे ओहो बड़ा काम कर डाला है आपने ?

सीता चौधरी साहब, आप क्या पंचायत में हैं ?

चौधरी (हंसकर) बेटी। क्या बताऊं गांव वालो ने मुझे सरपंच बना दिया है।

राम सरपंच! ओहो तब तो हम गांव के राजा से बातें कर रहे हैं।

चौधरी (हंसता हुआ हुक्का गुड़गड़ा कर) राजा। राजा अब कहां है, बेटा! अब तो सब सेवक हैं और बेटा। असली अधिकार तो गांव वालों के हैं। हमारी जरा भी गलती हुई पंचायत हम पर दावा कर देगी!

पांडे — जनता का राज ठहरा जी। जो पंचायत या पंच अपना कर्तव्य पालन नहीं करेंगे उन्हें सजा मिलेगी ही। नहीं तो पुराने और नये राज में फरक ही क्या होगा। क्योंजी इस गांव में कितने पंच है।

चौधरी — इसमें तो पन्द्रह पंच हैं। कहीं कम भी होते हैं, कहीं ज्यादा भी होते हैं।

सीता — यह पंचायत कितने गांवों की है?

चौधरी — यह बारह गांवों की है—कहीं कहीं एक गांव की भी एक पंचायत है। और कहीं बारह से कम व कहीं बारह से अधिक।

राम — क्यों चौधरी साहब। गांव में जो सरकारी अफसर होते हैं उनसे आप का क्या सम्बन्ध है।

चौधरी — बड़े अच्छे हैं। वैसे वे कोई गड़बड़ करे है तो हम ऊपर शिकायत कर सकते हैं। अभी पिछले दिनों एक पटवारी ने गड़बड़ की थी। मैंने बतेरा समझाया पर तुम जानों खून मुंह को लगा हुआ था नहीं माना। हारके ऊपर लिखा। जांच हुई और फिर नौकरी से निकाला गया। बड़ा दुःख हुआ पर क्या करें स्वतन्त्र भारत में भी सत और न्याय को नहीं मानेगे तो कैसे काम चलेगा।

पांडे — बिल्कुल ठीक कहा, चौधरी साहब। अब तो सभी को बिल्कुल पक्षपात रहित होना चाहिए। अपने निजी सुख, लाभ या कीर्ति की परवा न करके जनता के सच्चे हित का ध्यान रखना चाहिए।

चौधरी — (गुड़गड़ाहट) तुम्हारी उमर बढ़े बेटा, तुमने लाख रुपये की बात कही। जितनी ऊंची पदवी, उतनी बड़ी सेवा, उतना बड़ा त्याग बेटा, राम तुम्हारा भला करे, देखो पास को आओ। तुम से क्या छुपाना अपने खेतों में मजदूर हैं न—उनके लिए छोटे छोटे काम सिखाने का स्कूल खोलने का इरादा किया

हैं ! टोकरी बुनना, चटाइयां और कागद बनाना, तेल पेरना, चरखा चलाना, छोटे-छोटे खिलौने बनाना, सब कुछ उसमें सिखाया जायगा। उसीके लिए आज यह मीटिंग होगी !

राम — बात तो बड़ी फायदे की है चौधरी साहब। सभी लोगों के पास खेती नहीं है। जिनके पास खेती नहीं है वे इस प्रकार खा-कमा सकते हैं।

चौधरी — अजी मालदार बन सकते हैं। तुम कहो क्या हो, हाथ के काम में बड़ी बरकत होवे बेटा।

सीता — पर चौधरी साहब। ये सब काम करने को आपके पास पूरा पैसा है ?

चौधरी — पैसे की कहीं कमी नहीं होती, बेटी। अपनी सरकार है फिर हमें टैक्स लगाने का अधिकार है। इन कामों के लिए भी ले सकते हैं। खुद काश्त, व्यापार पेशा, सब पर टैक्स लगा सकते हैं। लगान पर दो पैसे से दो आना रुपया तक टैक्स लगता है और फिर हर गाँव में ऐसे दानी हैं जो पाठशाला, औषधालय व पंचायत घर वगैरा के लिए धन और मकान देने को राजी हैं।

पांडे — अपने गाँव में है कोई ऐसा ?

चौधरी — हाँ, हाँ, है क्यों नहीं ! ये आ रहे श्री लल्लूलालजी। एक पंच हैं, मैंने कहा लालाजी जै रामजी की।

(लल्लूलालजी का प्रवेश)

लल्लू — जै रामजी की चौधरी साहब। मैंने कहा ये बटेहू कहाँ से आये हैं।

चौधरी — लालाजी। ये तो शहर के मानस है। बुम्मन की बात कर रहे थे। (मुड़कर) बेटा, इन्हीं लालाजी ने पाठशाला के लिए अपनी दुकान दी है।

लाला — (हंसकर) अजी वह क्या बात है। देना किसको था। अपना गाँव, अपना स्कूल, अपनी दुकान, अपने बच्चे। किसने दी किसको दी। लाओ हुक्का इधर को करो, दम मार लूं। और देखो

वह कम्पोस्ट खाद बनाने की बात भी आज कर लेनी है।

चौधरी — हाँ, हाँ, कर लेंगे। लो हुक्का लो......सफाई का सवाल आयेगा ही उसीके साथ खाद बनाने की तजवीज पर सोच लेंगे।

लाला — हाँ जी बाबूसाहब। (हुक्का गुडगुडाता हुआ) और क्या देखा; कुछ ठहरो तो स्कूल देखते जाना! एक वाचनालय खोला है। एक औषधालय खोलने का विचार है। तुमसे कुछ सलाह करेंगे। शहर के रहने वाले बड़े चतुर होते हैं।

राम — अजी हम तो आपके सेवक हैं! वैसे शहर वालों का नाम ही है। मेरा तो यह अनुभव है कि गाँव के लोग अधिक ईमानदार और कम प्रपंचकारी होते हैं। उन्हें अवसर दिया जावे तो बहुत थोड़े समय में अच्छा प्रबन्ध कर सकते हैं।

चौधरी — (हंसकर) समझदार जान पड़ते हो।

लाला — (हंसकर) समझदार हैं तभी गाँव में घूमते हैं।

चधरी — बेटा? तुमने लाख टके की बात कही है, राम तुम्हारा भला करे। हम आपसी झगड़ों और दुश्मनी में न पड़े तो बहुत कुछ कर सकते हैं।

पांडे — क्यों नहीं कर सकते। लाभ जान पड़ेगा तो सब झगड़े दूर हो जायेंगे।

लाला — हाँ बाबू साहब। लाभ क्या कम है। नौकरों की अबे तबे नहीं सुननी पड़ती, गाँववालों को गंवार कहकर कोइ दुत्कार नहीं सकता। उनकी वही इज्जत है जो असेम्बली के मेम्बरों की है। पैसा बचता है। हमारी अपनी अदालतें हैं। शहरी अदालतों में लोग झूठा हल्फ उठा लेते थे लेकिन पंच परमेश्वर के सामने, उसी गांव में रहते हुए क्या कोई झूठ बोल सकता है? न वकील की जरूरत, न पुलिस की न, फौज की। राम राज्य है।

राम — बेशक रामराज्य है। आपकी बला से देश के राज्य में कुछ ही अदल बदल हो, आप चैन से जिन्दगी बसर करते रहेंगे!

चौधरी अजी राज की अदल बदल से अपना क्या मतलब। अपना काम जनता की सेवा करना है। जनता सुखी तो देश सुखी। बस एक चाह है कि अपनी मति स्वार्थ में न फंसे। मति ठीक रही धरती पर सुरग ही सुरग है।

लाला सो तो बाबा तुलसीदास कह गए हैं —

जहं सुमति तहं सम्पत्ति नाना,
जहं कुमति तहं विपति निधाना।

राम बेशक आपने ठीक समझा है। आपसे मिल कर हमें बड़ी प्रसन्न हुई। आप मीटिंग करिये, तब तक हम घूम आवें।

लाला चले न जाना। अभी तो तुमसे बहुत बातें करनी है। स्कू दिखाना है!

राम नहीं, नहीं, जायेंगे नहीं। शाम तक यहीं रहेंगे।

चौधरी (हंसकर) हां बेटा। आये हो तो कुछ मदद ही कर दो। देख खाने पीने को जो रूखा सूखा है तैयार है। और देखो मेरा पोता आ रहा है, उसे साथ करे देता हूं, खूब घुमा देगा। शहर में पढ़ा है (पुकारता है) अरे धरमू। ओ धरमू।

धरमू (दूर से आता स्वर) हां दादा।

चौधरी अरे बेटा। शहर से अपने बटेहू आए हैं। जरा इन्हें गांव में घुमा तो ला। दिखे यहीं ले आइयो। और हां घर रोटी के लिए कहते आना। (धरमू का प्रवेश)

धरमू अच्छा दादा।

चौधरी लो बेटा घूम आओ। हम अपनी मीटिंग कर लें।

राम बहुत अच्छा जी? आओ पांडे, सीता चलो।

पां.सी. चलो चलो।

[तीनों का धरमू के साथ जाना। समाप्त]